कवि की कीर्तिमान कृति

सरदार भगतसिंह

- उत्तर-प्रदेश शासन द्वारा एक हजार रुपए का पुरस्कार प्राप्त
- संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा सदस्य-राष्ट्रो मे प्रसारित
- शहीद की माता को समर्पित एक प्रति का विक्रय ३३०१ रु० मे हुआ ।
- शहीद की वीरमाता विद्यावतीजी ने स्वय कवि के घर पहुँच कर उसे हृदय से लगा कर आशीर्वाद दिया और हजारो की भीड मे कहा —

  'सरदार भगतसिंह' काव्य-ग्रन्थ मेरे बेटे के अनुरूप ही है । इसकी प्रति प्राप्त कर मुझे लग रहा है, जैसे मेरा बेटा भगतसिंह मेरी गोद में आ बैठा है । इसकी कविताएँ सुनकर मुझे लगता है, जैसे मेरा बेटा मुझसे बातें कर रहा है ।

जिन लोगो की लाशो पर चलकर आजादी आई,
उनकी याद बहुत ही गहरी लोगो ने दफनाई ।

प्रकाशकीय

प्रस्तुत काव्य श्री श्रीकृष्ण 'सरल' की उत्कट राष्ट्रीय विचारधारा तथा सशक्त अभिव्यक्ति का ज्वलन्त प्रमाण है। अपने छात्र-जीवन में ही देशभक्ति की तड़प लिए क्रान्ति के साधक इस कवि ने दमन-चक्र की चुनौतियों को स्वीकारते हुए अन्यायों के विरुद्ध अपने उन्मुक्त स्वरों को मुखरित किया है। उसी भाव-धारा का विकास है प्रस्तुत महाकाव्य—'सरदार भगतसिंह'।

सशस्त्र क्रान्ति के सम्पूर्ण इतिहास की प्रमुख झाँकियों में सँजोकर कवि ने शहीद-सम्राट सरदार भगतसिंह और उनके साथियों के मुक्ति-प्रयत्नों की कहानी 'आँखों-देखे' हाल के रूप में प्रस्तुत की है। इस कहानी के शब्द-शब्द में शहीदों के बलिदान, राष्ट्र के उत्थान, पौरुष के सम्मान तथा यौवन के तूफान की उग्र एवं निर्भीक अभिव्यक्ति मिलेगी।

प्रस्तुत काव्य-ग्रन्थ शोध-ग्रन्थ भी है। कवि ने समस्त भारत का कई बार भ्रमण करके उन सभी स्थलों को स्वयं देखा है जो क्रान्तिकारियों के कार्य-क्षेत्र रहे हैं। क्रान्तिकारियों के साथ जीवित सम्पर्क स्थापित कर, उनके घरों में और दिलों में रहकर कवि ने उनसे अगणित रहस्य प्राप्त कर इतिहास की अछूती घटनाओं का उद्घाटन किया है।

'सरदार भगतसिंह' महाकाव्य का यह संक्षिप्त संस्करण हम पाठकों के हाथों में दे रहे हैं। ६०८ पृष्ठ के मूल-ग्रन्थ को इस लघु रूप में लाने के लिए 'कथा-क्रम' का आश्रय लेना पड़ा है। जिससे किसी घटना का तारतम्य विशृंखलित न हो।

कवि-परिचय के रूप में इतना कह देना पर्याप्त है कि श्री 'सरल' का जन्म मध्यप्रदेश के गुना जिले के अशोकनगर स्थान पर सन् १९१९ में सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ है। कवि का दूसरा महाकाव्य है—'चन्द्रशेखर आजाद'। राष्ट्रीय विषयों पर और भी महाकाव्य कवि से प्राप्त होंगे, ऐसी आशा है।

प्रसंग-क्रम

अमर शहीद सरदार भगतसिंह

विस्फोट

गोली मार दूँगा !

पाठक डरे नही। यह बात मै उन्हे धमकाने के लिए नही कह रहा हूँ। ये शब्द है जो मेरे कानो मे अभी तक गूँज रहे है। घटना उस समय की है जब मै सरदार भगतसिंह की समाधि के दर्शन करने के लिए फीरोजपुर गया हुआ था। जाने के पूर्व मेरे एक दो पजाबी मित्रो ने समझाया था—"सम्हल कर रहना, वहाँ के लोग स्वभाव के बहुत तेज होते है। बात की बात मे दगे-फसाद और मार-पीट की घटनाएँ तो वहाँ मामूली बाते समझी जाती है। पाकिस्तान की सरहद पर बसते है, यदि ऐसा हौसला न रखे तो कैसे काम चले।"

मैने निर्देश का पालन किया। बहुत सम्हल कर रहा। किसी के व्यवहार मे मुझे कोई उद्दण्डता दिखाई नही दी। मैने मन मे सोचा, व्यर्थ ही बढा-चढा कर बाते कही गई थी। यहाँ तो सब बनिया किस्म के लोग दिखाई देते है। पर मेरी यह धारणा शीघ्र ही निर्मूल सिद्ध हो गई।

२३ मार्च को भगतसिंह की समाधि पर शहीदी मेला लगने वाला था। उस दिन सुबह ही मै अपने ठहरने के स्थान—देव समाज महिला महाविद्यालय से चलकर सडको पर इस इरादे से घूम रहा था कि भीड इकट्ठी होने के पूर्व समाधि पर पहुच कर कुछ एकान्त साधना करूँ। मै शहर मे दो-तीन दिन से घूम रहा था। शहर मे चर्चाएँ थी—"उज्जैन से एक शायर आया है, वह भगतसिंह पर कुछ लिखना चाहता है।" मै घूम ही रहा था कि एक दुबले-पतले अधेड से सज्जन मेरे सामने आए, 'भ्राजी!' से सम्बोधन करके नमस्ते किया और बोले—

"सुना है आप उज्जैन से तशरीफ लाए है?"

"जी हाँ!" मैने उत्तर दिया।

"सुना है आप शहीदे आजम भगतसिंह पर कुछ लिखना चाहते है!"

"विचार तो है।" मैने कहा।

"अच्छा हो यदि आप यह विचार छोड दे ।" उन्होंने लट्ठ-सा मार दिया । मैं भौंचक्का रह गया कि यह भला आदमी क्या कह रहा है । मैंने जिज्ञासा की दृष्टि से उन्हे देखा और कहा—"मुझे आपका मन्तव्य समझ मे नही आया । बडे खेद की बात है कि आप भगतसिंह पर लिखने के लिए मुझे रोक रहे हैं जब कि आपको प्रोत्साहित करना चाहिए ।"

अभी तक मैं उनके विषय मे बिलकुल अनभिज्ञ था, अत पूछ बैठा—

"क्या मै आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ ?"

उत्तर मिला—

"मै आपके सामने खडा हूँ, बात-चीत कर रहा हूँ । यही मेरा परिचय है । नाम-धाम जानकर क्या करेगे । यदि गलत भी बता दूँ तो आप कैसे जान पाएँगे ?"

मैंने कहा—"आप मुझे भगतसिंह पर लिखने से क्यो रोकना चाहते है?"

उन्होने कहा—

"बात यह है कि भगतसिंह या दूसरे क्रान्तिकारियो पर अभी तक बहुतो ने लिखा है । कई लोगो ने तो कूडा-कचरा लिख कर रख दिया है । आप भी उस कचरे मे एक मुट्ठी और डाल देगे, इससे ज्यादा की आप स और क्या आशा की जा सकती है ।"

यह बे-सोच बात सुनकर मुझे बडा विचित्र-सा लगा । बात चालू रखने के विचार से मैंने पूछा—

"आपने यह कैसे जान लिया कि मै जो लिखूँगा वह भी कूडा-कचरा ही होगा, जब कि आप मेरे विषय मे कुछ भी नही जानते ।"

उनका उत्तर था—

"आप जैसे बहुत से लोगो के विषय मे मै बहुत कुछ जानता हूँ । यहाँ कई आते है और चले जाते है । अपना बडा प्रचार करते है, बडा प्रदर्शन करते है, बडी-बडी प्रतिज्ञाएँ करते है, खूब वाह-वाही प्राप्त करते है और जब उनका लिखा हुआ सामने आता है तो राजनैतिक गोलमाल से अधिक कुछ नही निकलता ।"

मैंने कहा—

"ठीक है, पर मै बाध्य तो नही हू कि आपकी बात मान कर लिखने का विचार छोड दूँ । जब मैंने ठान लिया है तो अवश्य लिखूँगा ।"

उत्तेजित होकर उन्होने उत्तर दिया—

"यदि आपका लिखा हुआ ठीक नही निकला तो गोली मार दूंगा।"

मैं सकते मे आ गया इस उत्तर को सुन कर। देखता रह गया उस व्यक्ति की ओर जो मुझे गोली से मार देने की धमकी दे रहा था। मैंने सोचा, यह गोली मारने की बात तब के लिए कह रहा है जब मेरा लिखा हुआ पढ लेगा, पर अभी इसे छेडने मे क्या खतरा है। अत मर्म जानने के लिए मैंने तनिक छेड़ा—

"मै जानना चाहता हूँ कि आप अभी तक कितनो को गोली से मार चुके? क्या आपने किसी भ्रष्टाचारी के गोली मारी है? क्या आपने किसी गद्दार के गोली मारी है? क्या आपने किसी फिल्म-प्रोड्यूसर के गोली मारी है जो क्रान्तिकारियो पर ऊल-जलूल फिल्मे बना देते हे? फिर आप एक कवि को ही क्यो अपनी गोली का निशाना बनाना चाहते है जो नेक इरादे से शहीद पर कुछ लिखना चाहता है?"

इस बार उनका उत्तर था—

"भई! बुरा न मानना। जो लोग पतित है वे तो पहले से ही मरे हुए के समान हैं। आप शायर है। आपके लिखने और बोलने का लोगो पर असर पडता है। यदि आप लोग ही क्रान्तिकारियो के विषय मे गलत बाते लिखने लगेगे तो उनके प्रति लोगो मे श्रद्धा कम होती जायगी। मै फिर भी कहता हूँ कि क्रान्तिकारियो के ऊपर लिखना साँपो से खेलने के बराबर है। क्रान्तिकारी सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है पर वह यह कभी बर्दाश्त नही कर सकता कि कोई व्यक्ति उसके सिद्धान्त की हत्या करे। इसीलिए मैंने आप से निवेदन किया कि आप लिखने का विचार छोड दे। पर जब आप लिखना ही चाहते है तो लिखे और शौक से लिखे पर एक बात याद रहे कि क्रान्तिकारियो के प्रति ऊल-जलूल लिखने का पुरस्कार गोली भी हो सकती है और उनके प्रति वफादारी निभाने का नतीजा 'शाही मेहमानदारी' भी हो सकती है।"

बात बहुत खरी कह दी गई थी। मेरे लिए चुनौती भी थी। मैंने इस प्रसग का उल्लेख वहाँ किसी से नही किया। ऐसा करके मे चर्चाओ का विषय और पूछताछ का दफ्तर नही बनना चाहता था। मन मे सोचा, यदि किसी कारणवश न लिख सका तो लोग कहेगे—डर गया। चुनौती गाठ मे बाँधे रहा और लिखता गया। क्रान्तिकारियो के सिद्धान्त की बात सामने रही और जो बना लिख डाला। मुझे बडा आश्चर्य हुआ जब मैंने ग्रन्थ-लेखन के विषय

मे निर्देश प्राप्त करने के लिए अमर शहीद सरदार भगतसिंह के अनन्य मित्र श्री वटुकेश्वरदत्त को पत्र लिखा। उन्होने भी क्रान्तिकारियो के सिद्धान्तो का निर्वाह करने का परामर्श दिया। इसी प्रकार की बात शहीद के अनुज सरदार कुलवीरसिंह ने भी लिखी।

मैंने जो कुछ लिखा है वह सामने है—और सामने है मेरा खुला हुआ वक्ष—चुनौती देने वाले सज्जन की गोली खाने के लिए या उनके हृदय से लगने के लिए। वे इसे पढे और निर्णय करे।

प्रस्तुत काव्य-लेखन की मानसिक तैयारी तो कुछ समय से चल ही रही थी पर जब लिखने बैठा तो ७ महीने और २३ दिन मे इसे लिख कर पूर्ण कर डाला। २३ मार्च, सन् १९६३ ई० को भगतसिंह की समाधि पर बैठ कर लिखना प्रारम्भ किया था और १४ नवम्बर १९६३ को उज्जैन मे ग्रन्थ-लेखन का कार्य पूर्ण हो गया। गौरव-गर्वित सतलज के किनारे प्रारम्भ किया गया अनुष्ठान क्षिप्रा के पावन तट पर पूरा हुआ। इतने शीघ्र लिखा लेने का श्रेय शहीद की श्रद्धेय माँ को है जिसकी प्रेरणा और आशीर्वाद ने थकान और निराशा का अनुभव नही होने दिया। विदाई के समय के उसके ये शब्द मुझे आज भी याद है —

"बेटे! आशीर्वाद बोल कर क्या दू । मेरा रोम-रोम तुझे आशीर्वाद दे रहा है। मेरी तो तमन्ना है कि जब लिखना प्रारम्भ करे तो काम पूरा करके ही दम ले। ऐसा न हो कि मै ग्रन्थ को बिना देखे ही चली जाऊँ।"

उस माँ की इच्छा पूरी करने के लिए मैंने लिख कर ही दम लेने की बात सोची। इस बीच कुछ विचित्र अनुभव भी हुए। उन दिनो चार घण्टे से अधिक नही सो पाता था और कई राते तो पलक लगे बिना ही निकल जाती थी पर कभी सर-दर्द का भी अनुभव नही हुआ। विचित्र सपने आते रहते थे। जिन शहीदो के कभी जीवन मे दर्शन नही किये उनसे घण्टो बाते होती थी। कभी-कभी शहीद की माँ भी आ जाती थी और मेरे गले मे हाथ डाल कर, लिखा हुआ मुझसे सुनती थी। मुझे लगता कि उनके आँसू कागज पर टप-टप गिर रहे है। मै भी अपने आपको सयत न रख पाता। नीद खुलती तो थकान के स्थान पर ताजगी का ही अनुभव करता और लिखने बैठ जाता। मुझे याद आ जाता कि ऐसा ही स्नेहिल व्यवहार माँ ने मेरे साथ तब किया था जब मै उनके घर गया था।

किसी अज्ञात क्रान्तिकारी की गोली की चुनौती और शहीद की माँ के आँसुओ की प्रेरणा से लिखा गया यह महाकाव्य देश-वासियो के हाथो मे दे रहा हूँ—माँ भारती के चरणो पर डाल रहा हूँ। क्रान्तिकारियो के सिद्धान्तो का प्रतिपादन और देश पर मर-मिटने की भावना का प्रसारण ही लेखन का प्रमुख उद्देश्य रहा है। काव्य के भाव पक्ष और कला पक्ष के प्रति मै प्रयत्न-पूर्वक सजग नही रह सका। प्रस्तुत काव्य-लेखन मे मेरा अपना कुछ अलग दृष्टिकोण रहा है जिसका स्पष्टीकरण नीचे दे रहा हूँ।

(१) इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि कही काव्य-लेखन की झोक मे ऐतिहासिकता का गला न घुट जाय। केवल सत्य घटनाओ को ही काव्य-प्रसगो का आधार बनाया गया है। कवि-कल्पना की स्वच्छन्दता का उपयोग घटनाओ की व्याख्या अपने दृष्टिकोण से ही करने के लिए किया गया है।

(२) शहीद के बचपन की सभी घटनाएँ उसके परिवार के सदस्यो, सह-पाठियो तथा सम्बन्धियो द्वारा प्राप्त की गई है। क्रान्तिकारी जीवन की घटनाएँ अवशिष्ट क्रान्तिकारियो तथा अन्य अधिकृत व्यक्तियो से व्यक्तिगत रूप से हथियाई गई है। 'हथियाई गई' शब्द का प्रयोग मैने साभिप्राय किया हे क्योकि जिन क्रान्तिकारियो के सपर्क मे मै आया उनमे आत्म-प्रकाशन की अनिच्छा ही देखी और विश्वास-भाजन बन कर ही उनसे कुछ तथ्य प्राप्त कर सका। उनमे से कुछ ने तो अपने नाम का उल्लेख करने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया है और प्रतिबन्ध तोडने पर 'अच्छा न होगा' का सुपरिणाम भी बता दिया है।

यथासम्भव, ग्रन्थ मे उल्लिखित प्रत्येक घटना की सत्यता का प्रमाण भी कवि के पास सुरक्षित है।

(३) कवि का उद्देश्य घटनाओ का अबार लगाना नही, प्रत्युत घटनाओ के आधार पर व्यक्तित्व-दर्शन ही रहा है। आकार-भय के कारण कई घटनाओ को छोडना भी पडा है और केवल उन्ही घटनाओ को ग्रहण किया गया है जो क्रान्तिकारियो के उद्देश्य और सिद्धान्तो की स्थापना मे सहायक सिद्ध हुई।

(४) प्रबन्धकार ने चरित्रनायक के विचारो से तादात्म्य स्थापित करने के विचार से उस सभी साहित्य को पढने का प्रयत्न किया है जो शहीद ने स्वय पढा था। इसके अतिरिक्त ससार मे जहाँ-जहाँ क्रान्तियाँ हुई

है, उन सब का अध्ययन भी लेखन की पृष्ठ-भूमि के लिए आवश्यक समझा गया है। लेखक ने यथासभव उन सभी स्थलो का निरीक्षण किया है जो शहीद के कार्य क्षेत्र रहे थे।

(५) प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य की कथावस्तु को तेवीस सर्गो मे विभाजित करने का रहस्य यह है कि सरदार भगतसिंह को केवल २३ वर्ष की अवस्था मे ही फाँसी लगी थी। फाँसी भी सन् १६३१ की २३ मार्च सायकाल ७-२३ पर लगी थी। शहीद के जीवन के प्रत्येक वर्ष के लिए एक सर्ग की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक सर्ग मे शहीद के जीवन की प्रमुख घटनाएँ तथा देश की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ मिलेगी। विशेष कारणवश ही इस क्रम मे परिवर्तन कही-कही किया गया हे।

प्रथम सर्ग मे सितम्बर, सन् १६०७ ई० से अगस्त, सन् १६०८ ई० तक की घटनाओ का वर्णन है। यह क्रम इसी प्रकार आगे चलता गया है। अन्तिम सर्ग मे अगस्त, सन् १६३० से २३ मार्च १६३१ तक की घटनाओ का वर्णन है।

अब मैं सक्षेप मे शहीद के वशानुक्रम और वातावरण सम्बन्धी कुछ तत्वो पर प्रकाश डालना उचित समझूँगा जिनका प्रभाव उसके जीवन-निर्माण की दिशा मे रहा है।

पूर्वजो से प्राप्त की गई क्रान्ति की धरोहर

सरदार भगतसिंह जिस वश मे उत्पन्न हुआ उसे क्रान्तिकारियो का वश कहा जा सकता है। इस वश के लोगो ने रूढियो और अन्यायो के विरुद्ध सदैव ही सघर्ष किया है। भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह जी यज्ञ-हवन करने वाले कट्टर आर्य समाजी थे और अपने सिद्धान्त के पालन के लिए वे सब कुछ अर्पण करने को तैयार रहते थे। उनके विषय मे यशपाल जी तथा अन्य लेखको ने जो कुछ लिखा हे उसके आधार पर दो सस्मरण दे रहा हूँ।

सरदार अर्जुनसिह अपने किसी सम्बन्धी की शादी मे सम्मिलित होने के लिए पैदल चल कर किसी गाँव मे गये। वहाँ पहुँचने पर देखा कि शादी सपन्न कराने वाले ग्रथी साहब सत्यार्थ प्रकाश के विषय मे कुछ कल्पित बातो का उल्लेख करके उसका मजाक बना रहे है। सरदार साहब ने विरोध करते हुए

कहा कि सत्यार्थ प्रकाश मे ऐसा तो कही नही लिखा। ग्रंथी साहब ने कहा, यदि सत्यार्थ प्रकाश सामने ला दो तो बता दूँगा कि जो मै कह रहा हूँ वह कहाँ लिखा है। उन्हे पूरा विश्वास था कि उस गाँव मे तो क्या आस-पास के किसी गाँव मे भी सत्यार्थ प्रकाश की प्रति मिलना दुर्लभ है। बात समाप्त हो गई। लोगो ने अनुभव किया कि अर्जुनसिह जी कही दिखाई नही दे रहे है। समझ लिया गया कि अपनी हार से मुँह छिपा कर कही पडे होगे। रात गई, प्रात हुआ। लोगो ने देखा कि सरदार अर्जुनसिह जी अपनी बगल मे कुछ दबाए चले आ रहे है। रात ही रात मे अपने गाँव जाकर वे सत्यार्थ प्रकाश की प्रति उठा लाए थे। एक ही रात मे ६० मील का पैदल सफर कर लेना हौसले की बात थी जब कि इसके पूर्व भी वे पैदल चल कर ही आए थे। ग्रंथी साहब अपने वादे की रक्षा न कर सके जब कि सरदार साहब ने इतना कष्ट उठा कर अपने सिद्धान्त और सम्मान की रक्षा कर ली।

दूसरा सस्मरण बताता है कि सिख होते हुए भी सरदार अर्जुनसिह जी ने एक बार तम्बाकू की खेती कर डाली और काफी लाभ कमा लिया। बिरादरी द्वारा उन्हे निष्कासित कर दिया गया। सरदार जी ने प्रायश्चित किया और दड देकर फिर बिरादरी मे सम्मिलित कर लिए गये। अपने मित्रो को उन्होने समझाया —**जहाँ तर्क नहीं चलता, वहाँ उदाहरण काम देता है। मेरी बिरादरी के सामने यह उदाहरण तो है कि तम्बाकू जैसे निषिद्ध पदार्थ को छू लेने वाला व्यक्ति भी गुरुओं की आज्ञा द्वारा फिर पवित्र हो सकता है।"**

भगतसिह ऐसे दादा का पोता था। यह स्पष्ट है कि उसको साहस, शौर्य, रूढिवाद के प्रति विरोध, तर्क और विद्रोह की भावना पूर्वजो के रक्त से धरोहर के रूप मे मिली थी।

शहीद के पिता

भगतसिह के पिता सरदार किशनसिह जी भी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रहे है। उनका एक पैर घर मे और एक जेल मे रहा करता था। भगतसिह को अपने पिता के क्रान्ति सम्बन्धी हथकण्डो पर विश्वास था और स्वय बन्दी हो जाने पर जेल से जो पत्र-व्यवहार गुप्त रूप से अपने भाइयो से होता था उन मे इसी बात का सकेत होता था कि वे क्रान्ति की शिक्षा-दीक्षा अपने पिता के निर्देशन मे प्राप्त करे।

शहीद के चाचा

भगतसिंह के चाचा सरदार अजीतसिंह तो इतिहास प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रहे है। उनके नाम से अँग्रेजी हुकूमत थर्राती थी। लाला लाजपतराय के साथ ही सरदार अजीतसिंह को भारत से निष्कासित कर रगून की माँडले जेल मे रखा गया था। सरदार जी ने अपना शेष जीवन एक बागी की तरह विदेशो मे व्यतीत किया और अँग्रेजी साम्राज्य की हथकडियाँ उनके पीछे-पीछे मुँह लटकाये घूमती रही। जीवन के अन्तिम दिनो मे सरदार अजीतसिंह लौट कर भारत आ गये। देश की आजादी का यह दीवाना देश की आजादी-प्राप्ति के दिन, १५ अगस्त १९४७ ई० को आजादी का सकल्प पूरा करके इस लोक से उठ गया।

सरदार भगतसिंह के दूसरे चाचा सरदार स्वर्णसिंह भी अँग्रेजी साम्राज्य के कट्टर शत्रु रहे। जीवन भर वे इस साम्राज्य को उखाड फेकने का प्रयत्न करते रहे। कभी विद्रोही साहित्य प्रकाशित करते और कभी सशस्त्र-आक्रमण की योजना बनाते थे। सरदार स्वर्णसिंह का तो स्वर्गवास भी जेल मे हुआ था।

अपने चाचाओ की भाँति भला भगतसिंह क्यो न वश की मर्यादा का पालन करता? क्रान्ति की धरोहर उसे अपने पूर्वजो के रक्त से प्राप्त हुई और इस आग को उसने वातावरण की वायु से भडकाया। उसके छोटे भाइयो ने भी उसके निर्देशो के अनुरूप इस पथ को ग्रहण किया।

सरदार कुलवीरसिह

सरदार कुलवीरसिंह का जन्म सन् १९१५ ई० को नवाँकोट (लाहौर) मे हुआ।

मई १९३५ मे भारत के अँग्रेजी शासक जॉर्ज पचम की सिलवर जुबली के उत्सव मे बिजली बन्द कर के रग मे भग डालने के अपराध मे आपको गिरफ्तार किया गया पर उचित साक्ष्य न मिलने के कारण छोड देना पडा। १९३८ ई० मे आप पजाब किसान सभा के अध्यक्ष चुने गए। कानफ्रेस की अध्यक्षता करते हुए आपत्तिजनक भाषण देने के कारण आपको १½ साल की कैद का दण्ड मिला।

१९३९ ई० मे दूसरे महायुद्ध के छिड जाने पर भारतीय सुरक्षा कानून के अन्तर्गत आपको फिर कैद कर लिया गया। जेलो मे सुधार के लिए आपने ६५ दिन का अनशन किया।

जेल-जीवन के क्रम मे सरदार कुलवीरसिह मुल्तान, मिन्टगुमरी, रावलपिंडी, शाही किला लाहौर, सेन्ट्रल जेल लाहौर, गुजरात स्पेशल जेल मे रहे। आप देवली केम्प-जेल मे श्री जयप्रकाशनरायण और अजय घोष के साथ भी रह चुके है।

सरदार कुलतारसिह

सरदार कुलतारसिह का जन्म सन् १९१८ ई० मे श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पावन पर्व के दिन नवाँकोट (लाहौर) मे हुआ। अपने पूर्वजो की परम्परा का निर्वाह करते हुए आपने ब्रिटिश साम्राज्य पर कई घातक प्रहार किये और उनका फल भी वीरतापूर्वक चखा। देश-सेवा के पुरस्कार स्वरूप आपने निरन्तर सात वर्ष की जेल काटी। आप भी श्री जयप्रकाशनारायण के जेल के साथी रह चुके है। मिण्टगुमरी जेल मे आपने ६५ दिन तक अनशन करके अपने भाइयो के पथ का अनुसरण किया। आजकल आप सहारनपुर मे रहकर स्वतन्त्र रूप से समाज-सेवा के कार्यो मे रत है।

सरदार रणवीरसिह

श्री रणवीरसिह का जन्म ६ अगस्त, सन् १९२५ ई० को हुआ। बडे होने पर आपने भी अपने बडे भाइयो के चरण-चिन्हो पर चलना आरम्भ कर दिया। १९४२ के आन्दोलन मे आपने सक्रिय रूप से भाग लिया और कॉग्रेस के लाहौर आफिस से गिरफ्तार कर लिए गए। जेल से छूटने के पश्चात् आपने पजाब के प्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री रामानन्द मिश्रा के साथ मिलकर अँग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध तोड-फोड के कार्यक्रमो का सचालन करना प्रारम्भ कर दिया। आपने 'कौमी खिदमतगार' नाम की पार्टी का सगठन किया और देश-सेवा के व्रत मे लगे रहे। आजकल आपका किसी पार्टी से सम्बन्ध नही है और नैनीताल जिले के बाजपुर स्थान मे रहकर कृषि-कार्य कर रहे है।

सरदार राजेन्द्रसिह

सरदार राजेन्द्रसिह का जन्म सन् १९२६ ई० को लायलपुर जिले के बगा नामक स्थान मे हुआ। श्री राजेन्द्रसिह ने अपनी शक्ति का परीक्षण देश के सगठन मे किया। १९४७ ई० मे आपने यूथ मिलीशिया (Youth Militia) नाम की सस्था का सगठन करके युवको को शक्ति और सदाचार की प्रेरणा देना प्रारम्भ कर दिया। इसी यूथ मिलीशिया के सदस्यो के साथ आप लाहौर

मे रह कर साम्प्रदायिकता से उत्पन्न अशान्ति के दमन मे लगे रहे। फलस्वरूप पाकिस्तान सरकार ने आपको जेल मे वन्द कर दिया। काँग्रेसी प्रभाव के कारण श्री लियाकतअली खाँ ने आपको पुलिस की देखरेख मे फीरोजपुर पहुँचा कर मुक्त कर दिया।

आजकल आप भी नैनीताल जिले के वाजपुर नामक स्थान मे 'जनता कृषि फार्म' का सचालन कर रहे है।

यह है सरदार भगतसिंह के परिवार की क्रान्ति-साधना। इस समय उनकी तीन छोटी वहिने भी जन-कल्याण मे रत है।

वीवी अमरकौर ने सरदार भगतसिंह के जेल-जीवन मे वहुत सहयोग दिया था। जेल मे उनसे मिल कर क्रान्तिकारी गतिविधियो से उन्हे परिचित कराती रहती थी और गुप्त रूप से उनके पत्र ले जाकर क्रान्तिकारियो को देती थी। देश की सक्रिय राजनीति मे भी आपने भाग लिया है।

सरदार भगतसिह की दो अन्य वहने है—वीवी सुमित्रा तथा वीवी शकुन्तला।

सरदार भगतसिंह पर वातावरण का प्रभाव

क्रान्तिकारी परिवार मे उत्पन्न होने के साथ ही साथ भगतसिंह को वचपन से ही अपने घर मे और आसपास क्रान्तिकारी वातावरण मिल रहा था। उसके पिता सरदार किशनसिंह जी तथा दोनो चाचा सरदार अजीतसिंह जी तथा सरदार स्वर्णसिंह जी का जेलो मे आवागमन वना ही रहता था। घर पर गुप्त सभाएँ भी होती रहती थीं। देश भर के वडे-वडे नेता सरदार किशनसिंह जी के घर आते-जाते रहते थे। महाराष्ट्र केसरी स्व० श्री वालगगाधर तिलक ने तो वालक भगतसिंह को गोद मे खिला कर उसके विषय मे वहुत अच्छी भविष्यवाणी भी की थी। उठते-वैठते घर की स्त्रियो मे भी जेल-जीवन और देश की आजादी के विषय मे चर्चाएँ हुआ करती थी। भगतसिंह भी विद्रोह के इन वातावरण मे साँस लेकर अपनी वाल-योजनाओ पर क्रान्ति का रग चढा रहा था। यही कारण है कि ग्रन्थ के प्रारम्भिक वारह सर्गो मे भगतसिंह के विकास को वाल-मनोविज्ञान की कसौटी पर कस कर दिखाया गया है। 'पूत के लक्षण पालने मे' के अनुसार शैशव से ही उसके व्यवहार से यह प्रकट होने

लगा था कि यह बालक न केवल अपने वश की परम्परा का ही पालन करेगा वरन् दो कदम आगे जायगा ।

भगतसिह

एक विलक्षण व्यक्तित्व

सरदार भगतसिह् का व्यक्तित्व वास्तव मे विलक्षण ही कहा जाएगा। प्रगतिशील परिवार मे पालन होने के कारण उसकी प्रतिभा मे चार चाँद लग गये थे। डी० ए० वी० स्कूल की शिक्षा का उस पर वहुत प्रभाव था। नेशनल कॉलिज मे उसके सस्कार और भी दृढ हो गए थे। सिख होने पर भी छात्र-जीवन मे उसने केश नही रखे थे। केश तो उसने तव रखे जब अकाली आन्दोलन मे कूद पडा। केन्द्रीय क्रान्तिकारी समिति के निर्णय के अनुसार फिर उसने अपने केश कटवा दिए थे। रूखा-सूखा भोजन और मोटी खद्दर का परिधान उसकी अपनी रुचियाँ थी। जैसी परिस्थिति हो, उसके अनुसार सट जाने की उसमे विलक्षण शक्ति थी। उसकी हस्ती फाकेमस्ती मे भी निखर उठता थी।

भगतसिंह प्रतिभा का धनी था। छात्र-जीवन मे वह मेधावी था। उर्दू और पजावी तो उसकी मातृ-भाषाएँ थी ही, उसने सस्कृत का भी अच्छा अध्ययन किया था। हिन्दा का भी वह वहुत अच्छा लेखक था। श्री यशपाल ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की निवन्ध प्रतियोगिता मे उसके द्वारा प्रथम पुरस्कार का अधिकारी होने की वात का उल्लेख 'सिहावलोकन' मे किया है। अँग्रेजी भाषा पर भी उसका वहुत अच्छा अधिकार था। अदालत मे दिया गया अँग्रेजी का वयान उसी ने तैयार किया था जिसकी प्रशसा वडे-वडे कानूनी व्यक्तियो ने की थी। अपनी भाषण-कला के प्रभाव से वह सभा-जीत कहलाता था। वह उच्च कोटि का तार्किक भी था।

भगतसिह के क्रान्तिकारी साथियो ने वताया कि उसमे अकूत शारीरिक वल था। वह वडे-वडे पहलवानो को अपने दोनो हाथो मे ऊपर उठाकर हवा मे झुला कर दूर फेक देता था। एक सस्मरण है—जेल मे एक महीने के अनशन के पश्चात् भगतसिंह को वलात्पान कराने की योजना वनाई गई। आठ आदमियो ने उसके हाथ पकडे। जेल के हत्यारे अपराधी—एक लम्वे-तगडे पठान को उसके पैर पकडने का काम दिया गया। ज्योही पठान पैर पकडने वढा, भगतसिह् ने उसके सीने मे वह कसकर लात मारी कि पठान का

सर पिछली दीवाल से टकरा कर फट गया और उसे तत्काल अस्पताल पहुँचाया गया। भगतसिंह के बल का दूसरा संस्मरण मुझे प्रोफेसर लघाटे ने बताया कि किस तरह भगतसिंह के एक ही चाटे मे एक अँग्रेज पुलिस अफसर लोटन कबूतर बन कर नाली मे जा गिरा। स्वभाव से भगतसिंह बहुत ही उद्दण्ड (साथियो ने चर्चा के बीच उसके लिए 'हूश' शब्द का प्रयोग किया था) था पर अपने साथियो और बड़ो के प्रति उसमे असीम स्नेह और विनम्र भाव था। बच्चो का चाचा बनने मे उसे देर नही लगती थी।

शारीरिक बल के साथ ही भगतसिंह बुद्धि-बल का भी धनी था। परिस्थिति को भाँप लेने की उसमे अद्भुत क्षमता थी। इसीलिए तो वह अपने दल का मस्तिष्क कहा जाता था। कठिन परिस्थिति मे भी उचित निर्णय पर पहुँच जाना उसकी अपनी विशेषता थी।

विनोद-प्रियता भगतसिंह से सुशोभित होती थी। दूसरे को बुद्धू बनाना उसके बाँए हाथ का खेल था। दूसरो के मनोरजन के लिए स्वय बुद्धू बन जाने मे भी उसे कोई आपत्ति नही होती थी। जेल-जीवन मे भी वह हँसी-मजाक और चुटकुलो द्वारा साथियो के कहकहे लगवाया करता था। एक समय भगतसिंह अदालत मे भी जोर से हँस पड़ा तो सरकारी वकील ने आपत्ति की—

"न्यायमूर्ति महोदय! अभियुक्त अदालत मे हँस कर अदालत का अपमान कर रहा है। उसे इसका दण्ड मिलना चाहिए।"

भगतसिंह ने और जोर से हँस कर कहा—

"मैं तो हँसने और हँसाने के लिए ही पैदा हुआ हूँ। बाहर भी हंसता था, जेल मे भी हँसता हूँ, अदालत मे भी हँस रहा हूँ और जब मैं फांसी के तख्ते पर भी खड़ा होकर हँसूँगा तो वकील साहब किस अदालत से मेरी शिकायत करेंगे और कौन-सा दण्ड मुझे दिलाएँगे।"

भगतसिंह ने अपना दावा सिद्ध करके दिखा दिया। भगतसिंह पर सदाचार का बन्धन अटूट था। शृङ्गार-चित्रण के उद्देश्य से मैंने यह पता लगाने का बहुत प्रयत्न किया कि उसका कभी किसी लड़की से 'मामला जमा या नही' (भगतसिंह दूसरो के लिए इसी मुहाविरे का प्रयोग करता था) पर इस दिशा मे मुझे सदा ही निराश होना पड़ा। ऐसी कोई दुर्बलता उसे छू तक नही गई थी। व्यक्तित्व के सौन्दर्य, आकर्षण और प्रभाव की उसमे कमी नही

थी। उसकी फाँसी का समाचार पाकर पजाब की एक प्रमुख महिला ने कहा था —

"आज जाने देश की कितनी महत्वाकांक्षी कुमारियो के हृदय विधवा हो गए होगे।"

भगतसिह के चरित्र के इस पक्ष के विषय मे मैंने उसके दल के अन्य, सदस्यो के अतिरिक्त उसके भाई राजेन्द्रसिह से भी पूछ-ताछ कर डाली। उत्तर की पक्तियाँ उद्धृत कर रहा हू—

"आपके पाँचवें प्रश्न का उत्तर यही है कि सरदार जी के जीवन मे कभी कोई औरत नही आई। वे बहुत छोटी उम्र से देश-सेवा मे लग गए थे। केवल पन्द्रह वर्ष की आयु मे ड्रामा पार्टी बना कर ऐसे ड्रामे करते थे जिससे देश प्रेम जागे। प्रताप ड्रामा मे वे खुद राणा प्रताप बने थे। मैजिक लालटेन से वे शहीदो के चित्र दिखाते थे।"

कहना पडेगा कि भगतसिह का व्यक्तित्व असाधारण विशेषताओ का पु जीभूत स्वरूप था। कर्मठता के साथ भावुकता उसके स्वभाव की विशेषता थी। कोई भी बहादुरी का काम करने के उपरान्त उसके चेहरे पर विलक्षण तेज ज्योतित हो उठता था। मानवीय सवेदनाओ के उस सार्थवाह ने राष्ट्र के शत्रु सान्डर्स को अपनी गोली का निशाना बना कर भी सहानुभूति के स्वर मे भावुकता से कहा था —**"कितना अच्छा नौ-जवान था वह।"**

भगतसिह ये सारे खेल केवल तेवीस वर्ष की अवस्था मे खेल गया। उसका अस्तित्व क्रान्ति-गगन मे धूमकेतु के उदय से क्या कम था ?

सशस्त्र क्रान्ति को भगतसिह की देन

सशस्त्र क्रान्ति के इतिहास मे भगतसिह को एक नया मोड या क्रान्ति के पथ का दिशा-निर्देशक कहा जा सकता है। उसके पूर्ववर्ती क्रान्तिकारियो के बलिदान भी कम नही थे पर वह इस आन्दोलन की निर्बलताओ को जान चुका था और भरसक उसने उनका परिमार्जन किया। उसके पूर्व के क्रान्तिकारी फाँसी पर चढते समय, वेद-मत्र, गीता के श्लोक या कुरान की आयतो का पाठ करते थे। भगतसिह ने इस सब को भी मृत्यु-भय से बचने का एक साधन समझा और उसने अधिक साहस के साथ मरने की

प्रेरणा दी। यही कारण है कि उसके समय के क्रान्तिकारी 'इन्कलाव जिन्दा-वाद !' 'साम्राज्यवाद का नाश हो' के नारे लगाते हुए फाँसी के फन्दे चूमते थे।

ससार की क्रान्तियो का अच्छा अध्ययन होने के कारण भगतसिंह ने भारत के सशस्त्र आन्दोलन को एक देश-व्यापी सगठन का रूप प्रदान किया। वह समझता था कि देश के विभिन्न भागो मे होने वाले छुट-पुट विस्फोटो से या इनी-गिनी हत्याओ से अँग्रेजी साम्राज्य की नीव हिल नही सकती। अत उसने सभी प्रान्तो के क्रान्तिकारियो को एक सूत्र मे पिरोकर एक शक्तिशाली सगठन बनाने मे कोई कसर उठा नही रखी। पजाब, बगाल, बिहार, सयुक्त प्रान्त, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के प्रान्तो मे बिखरे-बिखरे क्रान्तिकारियों को सगठित कर एक दृढ मोर्चे का निर्माण करने मे भगतसिह को अभूतपूर्व सफलता मिली। प्रत्येक प्रान्त के गर्म-दलीय व्यक्तियो मे उसने सपर्क स्थापित किया था। सुभापचन्द्र बोस तो भगतसिह पर लट्टू थे। भगतसिह के बाल्य जीवन से ही उनका परिचय उससे हो गया था। सुभापचन्द्र बोस भगतसिह से अवस्था मे लगभग नौ वर्ष बडे थे, पर इन दोनो मे बडी अतरगता थी। श्री बोस ने जब 'भारतीय राष्ट्रीय सेना' का निर्माण किया तो उसके युद्ध के नारे थे—

इन्कलाव जिन्दाबाद !
भगतसिह जिन्दाबाद !

मार्च १९४५ मे जब आई० एन० ए० द्वारा जीते गए प्रदेश फिर अँग्रेजो के अधिकार मे पहुँच गए थे और सैन्य-शिविरो मे जब निराशा के बादल घनी-भूत हो उठे थे तब नेताजी की ललकार सुनाई दी थी—

"साथियो ! दुनियाँ के लिए लडाई खत्म हो सकती है लेकिन हमारे लिए नहीं। हमारी लडाई तब तक जारी रहेगी जब तक हिन्दुस्तान मुकम्मिल तौर से आजाद नहीं हो जाता। हम आगे बढ़े। दुश्मन के खिलाफ हर सूरत और हर मुकाम पर लडना हमारा फर्ज है। आज हमे भगतसिह बनने की जरूरत है। एक भगतसिह लाखो की तादाद से बढ कर काम कर सकता है।"

भगतसिह के व्यक्तित्व मे कुछ ऐसा प्रभाव था कि जो एक बार भी उसके सपर्क में आता वह उसका बन कर रह जाता था। उसकी चितवन मे कुछ ऐसा

सम्मोहन था जो लोगो के मनो को बरबस अपनी ओर खीच लेता था। मानव मन का पारखी होने के नाते ब-ो के सामने ठुनक कर, छोटो को थपथपा कर, सम-वयस्को को गुदगुदा कर और विरोधियो को घुडक कर अपना काम बना लेता था। जोखिम के काम मे वह अपने साथियो को पीछे रखकर, स्वय ही जान झोकने के लिए सब से आगे रहता था।

उसने जीवन की नही
अपनी मौत की योजना बनाई थी

लोगो को यह विचित्र-सा लगेगा कि कोई अपनी मौत की योजना क्यो बनाने चलेगा। पर यह सत्य है कि भग।सिह ने अपनी मृत्यु की योजना बनाई थी। निष्क्रिय दीर्घ जीवन की अपेक्षा वह सक्रिय अल्प-जीवन और सार्थक मृत्यु का पक्षपाती था। सक्रिय जीवन की बात सिद्ध करने के लिए प्रमाण प्रस्तुत है —

+ छात्र-जीवन मे ही उसने विश्व-क्रान्तियो का अध्ययन कर डाला था और छात्र-सगठन का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।
+ देश की पुकार पर अध्ययन को तिलाजलि देकर वह असहयोग के अखाडे मे उतर पडा।
+ असहयोग आन्दोलन के लडखडा जाने पर वह अकालियो के गुरुद्वारा आन्दोलन मे कूद पडा।
+ गुरुद्वारा आन्दोलन की सफलता के पश्चात् वह फिर कॉलेज मे प्रविष्ट हो गया।
+ सशस्त्र क्रान्ति की योजना बन जाने पर उसने कॉलेज से भी मुख मोड लिया।
+ निष्क्रिय न बैठ कर जीविका के प्रश्नो के कई उत्तर खोजे—कृषि-कार्य किया, दूध की डेरी चलाई, अखबार बेचे, सपादन कार्य किया और सब के साथ-साथ क्रान्ति की भट्टी भी दहकाई।
+ क्रान्तिकारियो के सगठन के लिए देश के कोने-कोने मे चक्रवात-सा घूमता रहा।

सक्रिय जीवन के साथ ही साथ भगतसिह के पास अपनी सार्थक मृत्यु की सुनिश्चित योजना थी और दृढता के साथ वह उसे कार्यान्वित कर रहा था।

उसके मन मे यह सकल्प घर कर गया था कि वह अपनी साहसिक मृत्यु द्वारा देश के निराश जीवन मे प्राण फूँक सकता है और सुपुप्त राष्ट्रीयता को भकभोर कर खडा कर सकता है। ऐसी एक मृत्यु को वह लाख जीवन से श्रेयस्कर समझता था। हुआ भी यही। उसकी मृत्यु के पश्चात् जो तूफान खडा हुआ उसकी भयकरता से अँग्रेजी साम्राज्य की नैया डगमगाए विना न रह सकी। उसने अपनी मृत्यु की योजना बनाई थी उसके प्रमाण है —

- जलयानवाला वाग के हत्या-काण्ड के समय भगतसिह की आयु लगभग बारह वर्ष थी। इतनी कम आयु मे वह हत्याकाड के के पश्चात् युक्तिपूर्वक वाग के अन्दर गया और शहीदो के खून से सनी मिट्टी भर लाया। इस रहस्य को उसने अपने तक ही सीमित रखा और खूनी मिट्टी की नित्य पूजा करता रहा। उसका सकल्प था कि वह या तो इस हत्याकाण्ड का बदला लेगा या उसी प्रकार की मृत्यु का वरण करेगा।

- लाहौर के अनारकली बाजार मे एक बार उसके पिता ने क्रुद्ध होकर उसे छडी से मारते हुआ कहा—"शहर मे तुझे कौन जानता है। तू तो हमारे नाम से चलता-फिरता है और हमारे नाम से पूछा जाता है।"

भगतसिह ने दृढता से उत्तर दिया था —

"पिताजी! यह ठीक है कि आज मै आपके नाम से चलता-फिरता हूँ और आपके नाम से पूछा जाता हूँ पर एक दिन आएगा जब आप मेरा नाम लेकर चलेंगे-फिरेंगे और लोग आपको भगतसिह के पिता के नाम से जानेंगे।"

सोचने की बात है, इस उत्तर के पीछे उसे किस सकल्प का बल था।

- शादी का प्रस्ताव आने पर वह घर से भाग खडा हुआ। उसके सामने उदाहरण थे कि उसकी दो चाचियाँ किस प्रकार अपने पतियो के वियोग मे रो-रो कर जीवन व्यतीत कर रही थी। वह नही चाहता था कि वह भी किसी को रोने छोड जाय।

- आशकित मृत्यु के समय वह औरो को पीछे रख कर स्वय ही सबके आगे रहता था। पहले बम का परीक्षण झाँसी के जगल मे उसने स्वय अपने हाथ से किया था। सान्डर्स को गोली मारने की योजना मे उसने सब से आगे का मोर्चा सम्हाला था।

- यह जानते हुए भी कि वह सान्डर्स-वध कर चुका है और पकडे जाने पर फाँसी निश्चित है स्वय अनुरोध करके वह केन्द्रीय असेम्बली मे बम फेंकने

गया और वहाँ अपने दल की नीति के प्रकाशन के लिए आत्म-समर्पण किया ।

- भगतसिह को निर्दोष सिद्ध करने के लिए सबसे बडी योजना श्री सुभाषचन्द्र बोस के पास थी । उन्होने सिद्ध कर दिया था कि जिस दिन सान्डर्स मारा गया है उस दिन भगतसिह लाहौर मे न होकर कलकत्ता में था और ट्राफिक के नियमो का उल्लघन करने के अपराध मे उसने कलकत्ता की अदालत मे जुर्माना भरा था । भगतसिह ने आग्रहपूर्वक अपने बचाव मे इस प्रमाण को प्रस्तुत नही होने दिया ।

- भगतसिह को जेल से छुडाने की बडी भारी योजना बनाई गई । इस योजना मे क्रान्ति-वीर श्री भगवतीचरण को अपने जीवन का बलिदान देना पडा । भगतसिह ने पूर्व-सहमति प्रकट करके भी इस युक्ति-योजना को कार्यान्वित नही होने दिया । मन-चाही मौत का पुरस्कार छोड कर वह भगोडा कहलाने को तैयार नही हुआ । उसकी ओर से निर्दिष्ट सकेत न मिलने पर पूरा दल अपने बम गोले और मोटर गाडियाँ लेकर निराश हो कर लौट गया ।

- देश के बडे-बडे नेता भगतसिह से मिलने जेल मे गये । प० मोतीलाल नेहरू, प० जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र बोस, श्री गणेशशकर विद्यार्थी, श्री नरीमन, श्री रफीअहमद किदवई और श्री मोहनलाल सक्सेना आदि ने भगतसिह को बहुत समझाया पर वह किसी भी मूल्य पर अँग्रेजी साम्राज्य से समझौता करने तैयार नही हुआ ।

- फाँसी की आज्ञा मिलने पर वायसराय के पास दया-याचना (Mercy Petition) भेजने के लिए भी भगतसिह को बहुत फुसलाया गया पर वह टस से मस नही हुआ । उसकी जबान पर तो यह शेर चढा रहता था :—

> **"जब से सुना है मरने का नाम जिन्दगी है—**
> **सर से कफन लपेटे कातिल को ढूँढते है ।"**

आखिर उसने कातिल को ढूढ ही लिया । जीवन के मच पर उसने मौत का वरण कर ही लिया । आज भगतसिह हमारे बीच नही है । भगतसिह और देश के कई सपूतो ने धरती की आजादी के लिए अपने जीवन होम दिए । वे तो स्वय अपने साथ लेकर चलने वाले अपने कफन ओढ चुके । यदि देश को जिन्दा रखना है तो उनकी बलिदान-भावना को विस्मृति का

कफन न उढाया जाय और ईमानदारी के साथ इस बात का भी अनुभव किया जाय कि देश की आजादी के रास्ते मे शहीदो की लाशो के पाँवडे भी बिछे हैं।

युग-भावना पर समर्पित होकर कवि की भावना, ग्रन्थ के आवरण मे आपके हाथो मे है। इसे आप कैसे अपनाते है, आप जाने।

गोपाल-भवन, माधवनगर
उज्जैन, म० प्र०
२७ सितम्बर १९६४ ई०

श्रीकृष्ण 'सरल'

सरदार भगतसिंह

सिंह-जननी

शान्ति के वरदान-सी तुम धवल-वसना कौन ?
सकुचित है मौन भी लख कर तुम्हारा मौन।
दूध की मुस्कान से संपृक्त ये सित केश,
सौम्यता पर शुभ्रता का ज्यो विमल परिवेश।

साधुता की, सरल जीवन के लिये यह देन,
उल्लसित मथित अमल ज्यो ज्योत्स्ना का फेन।
भव्यता धारण किये शुचि धवल दिव्य दुकूल,
या खिले जीवन-लता पर ये सुयश के फूल।

कलुषता निर्वासिनी, यह धवलता की जीत,
संवरित है शीष पर, यह स्नेह का नवनीत।
प्रस्फुटित है भाल पर मानो हृदय का ओप,
साधना पर, सिद्धि का मानो सुखद आरोप।

और मुख पर स्निग्ध अन्तर की झलकती कान्ति,
लग रही, ज्यो साँस सुख की ले रही हो शान्ति।
भावनाओ की, मुखाकृति सहज, पुण्य-प्रसूति,
झुर्रियों मे युग-युगों की सन्निहित अनुभूति।

देह पर चित्रित त्वचा की संकुचित हर रेख,
लग रही वय-पत्र पर ज्यो एक सुन्दर लेख।
या कि जीवन-भूमि पर पग-डण्डियों का जाल,
चल रहा वय का पथिक सध्या समय की चाल।

कौन हो इस भाँति अपने आप में तुम लीन ?
कौन हो तुम पुण्य-प्रतिमा-सी यहाँ आसीन।
कौन स्नेहाशीष की तुम मूर्ति अमित उदार ?
कौन श्रद्धा-भावना ही तुम स्वयं साकार ?

कौन तुम, मन मे तुम्हारे कौन-सी है व्याधि ?
अर्चना हित खीच लाई तुम्हे दिव्य समाधि।
है कृती वह कौन, किसका समाधिस्थ कृतित्व ?
वन्दना से स्वय वन्दित, कौन, वह व्यक्तित्व।

कौन माँ ममता-मयी तुम ? क्यो नयन मे नीर ?
उच्छ्वसित उर मे तुम्हारे, कौन-सी है पीर ?
पूछता हूँ मैं अकिंचन एक कवि अनजान,
भाव-मग्ना कर रही तुम किस व्रती का ध्यान ?

"बस करो अब वत्स ! अपना सुन लिया स्तुति-गान,
अब नही अपराध, आगे कर सकेंगे कान।
बात हौले से करो, स्वर को सम्हाल-सम्हाल,
सो रहा इस भूमि मे बरजोर मेरा लाल।

सो रहा है यहाँ, मेरी कोख का भूचाल,
सो रहा इस भूमि मे निज शत्रुओ का काल।
सो रहा है मातृ-मन का यहाँ शाश्वत गर्व,
सो रहा सुख से, मना कर वह यहाँ बलि-पर्व।

सो रहा वंशानुक्रम से पुष्ट रक्तोन्माद,
जो कि वातावरण मे ढल बन गया फौलाद।
सो रहा है यहाँ, मेरी आग का प्रिय फूल,
स्वर्ग का सुख दे रही उसको, धरा की धूल।

धूम धरती पर मचा, विद्रोह का वरदान,
यहाँ मेरे दूध का सोया अजस्र उफान।
सो गया उल्लास मेरा, सो गया आमोद,
एक मा की गोद तज कर, दूसरी की गोद।

ओज अन्तस् आ, यहाँ पर कर रहा विश्राम,
वत्स ! क्या तुमको बता दूँ उस हठी का नाम ?
लाल वह मेरा भगत, था सिंह ही साकार,
जन्म से ही था कहाया गया वह सरदार।

गर्जना उसकी त्रिकट सुन, काँपते थे लाट,
निर्धना मै, वह शहीदो का बना सम्राट।
सुन लिया, क्या और परिचय रह गया कुछ शेष ?
यहाँ मेरी भावना का सो रहा आवेश।"

और हाँ, पूछी अभी तुमने हृदय की पीर,
पूछते थे तुम, लिये मैं क्यों नयन में नीर।
तो सुनो, है सहज ही सुत-व्यथा का सन्ताप,
सुन न पाती आज मैं निज तात का सलाप।

वह न मेरे पास, मेरी गोद का शृंगार,
आज सूना है हृदय, खोकर हृदय का हार।
है तड़पते कान सुनने लाल के प्रिय बोल,
है कहाँ वे चूम लूँ जो मधुर स्निग्ध कपोल।

अक मे भर लूँ जिसे, वह कहाँ कोमल गात,
वह न मेरे पास, उसकी रह गई है बात।
मातृ-मन्दिर पर हुआ अर्पित सुकोमल फूल,
शत्रुओ से जूझ, फासी पर गया वह झूल।

सांत्वना देता है मुझे लाल का सन्देश,
"शीघ्र ही स्वाधीन होगा माँ! हमारा देश।
तुम न समझो माँ! तुम्हारी गोद से मैं दूर,
तुम न समझो, आज तुम पर है विधाता क्रूर।

माँ! हमारे देश के जितने हठीले बाल,
वे तुम्हारे ही भगत है, वे तुम्हारे लाल।
देख छवि उनकी, किया करना मुझे तुम याद,
विसर्जन मेरा, न बन जाये तुम्हे अवसाद।

स्वर्ग भी है जिस धरा के सामने अति रंक,
जो सभी को माँ हमारी, ले रही वह अंक।
व्यर्थ जायेगा नही माँ! एक यह बलिदान,
है निकट स्वाधीनता का सुखद पुण्य-विहान।

मुक्ति की मंगल-प्रभाती सुने जिस दिन कान,
ले नया उत्साह, खग-कुल कर उठे कल-गान।
जिस सुबह हो देश का वातावरण स्वच्छन्द—
गा उठे कवि-कठ जिस दिन गीत नव, नव-छन्द—

मुक्ति के दिन वाल-रवि की रश्मियो का जाल—
इस धरा पर कुंकुमी आभा अलभ्य उछाल—
पुण्य-भारतवर्ष का जिस दिन करे अभिषेक—
देश के नर-नाहरो की पूर्ण हो जव टेक—

जव उठे दीवानगी की लहर चारो ओर—
गगन-भेदी घोष चूमे जव गगन के छोर—
जब दिशाओ मे तरगित हो हृदय का हर्ष—
विश्व अभिनन्दन करे—जय देश भारतवर्ष!

तब मिलूगा तुम्हे फूलो की सुरभि के सग,
तुम्हे किरणो मे मिलूगा मैं लिये नव-रंग।
जब पवन अठखेलियाँ कर, करे तुमको तग,
तब समझना, ये भगत के ही निराले ढग।

तव लगेगा माँ! दुपट्टा मैं रहा हूँ खीच,
तब लगेगा मैं तुम्हारे दृग रहा हूँ मीच।
भास परिचित स्पर्श का पा जव पुलक के साथ,
हाथ मेरा खीचने, अपना वढा कर हाथ—

जव कहोगी—कौन है रे ढीठ! तू है कौन?
तव तुम्हे उत्तर मिलेगा एक केवल मौन।
तुम चकित हो, चौक देखोगी वहाँ सव ओर,
सुन सकोगी हर्ष-ध्वनियाँ और जय का शोर।

एक ही क्यो भगत, देखोगी अनेको वीर,
नमित नयनों मे तुम्हारे चू पड़ेगा नीर।
घुल सकेगा, धुल सकेगा रोष का उन्माद,
गर्व से प्रतिपल करोगी माँ मुझे तुम याद।

तो यही सन्देश सुत का, कर रहा परितोप,
है सराहा भाग्य मैंने, दे न विधि को दोष।
वत्स ! अन्तर का बताया है तुम्हे सब हाल,
तुम बताओ, क्यो बने जिज्ञासु तुम इस काल ?"

"लग रहा माँ ! मुझे जैसे आज जीवन धन्य,
आज मुझ-सा भाग्य-शाली कौन होगा अन्य ?
कर न पाया तप कि पहले मिल गया वरदान,
पूर्ण होता दिख रहा अपना बडा अरमान।

भावनाओ ने हृदय से है किया अनुबन्ध
क्रान्ति के इस देवता पर लिखूं छन्द प्रबन्ध।
आ गया इस ओर लेने प्रेरणा मैं आज,
माँ ! तुम्हारे लाल की जैसे सुनी आवाज—

लगा जैसे कह रहा हो, सिह आज दहाड,
लेखनी से कवि निराशा का कुहासा फाड।
तुम सुकवि हो, मिला वाणी का तुम्हे वरदान,
तुम जगा दो निज स्वरो से देश मे बलिदान।

लेखनी की नोक मे भर दो हृदय की शक्ति,
और कह दो धर्म केवल है धरा की भक्ति।
देश की मिट्टी इधर, उस ओर सौ साम्राज्य,
ग्रहण मिट्टी को करो, साम्राज्य हों सौ त्याज्य।

शीष पर धर देश की मिट्टी, करो प्रण आज,
प्राण देकर भी रखेंगे, हम धरा की लाज।
सह न पायेंगे कभी हम, देश का अपमान,
देश का सम्मान है प्रत्येक का सम्मान।

जो उठाये इस हमारी मातृ-भू पर आँख,
रोष की ज्वाला बने, हर फूल की हर पाँख।
भूल कर भी जो छुए इस देश का सम्मान,
कड़कती बिजली बने हर कली की मुस्कान।

लक्ष्य इस आदर्श का, सब को बता दो आज,
सो रहे जो, कवि ! जगा दो दे उन्हे आवाज।
आज कवि की लेखनी उगले कुटिल अगार,
साधना का, रक्त की लाली करे शृंगार।

गर्जना का घोष हो, हर शब्द की झंकार,
रोष की हुँकार हो गाण्डीव की टंकार।
शान्ति का सरगम बने संघर्ष का उत्कर्ष,
आज भारतवर्ष का हर वीर हो दुर्द्धर्ष।

कवि ! भरो पाषाण मे भी आज पागल प्राण,
चाहता युग कवि-स्वरो का आज सत्य प्रमाण।
कर सके यह, लेखनी का तो सफल अस्तित्व,
सफल, वाणी का मिला जो आज तुमको स्वत्व।"

"माँ ! इसी सन्देश की उर ने सुनी आवाज,
खीच लाई है यही आवाज मुझको आज।
क्रान्ति के जो देवता, मेरे लिये आराध्य,
काव्य साधन मात्र, उनकी वन्दना है साध्य।

———

पंजाबी पानी

यह विस्तृत पंजाब प्रान्त, यह वन-प्रान्तर मैदानी,
पानीदार बनाता सब को, यहाँ पच-नद पानी।
इस पानी मे भाव क्रान्ति के घुले हुए रहते है,
यहाँ जान पर सभी खेलने तुले हुए रहते है।

अन्यायो को लख, न किसी के होठ सिले रहते है।
उर में विप्लव पलता, चेहरे खिले-खिले रहते है।
जैसी नदियो की धाराएँ, वैसी मन की गति है,
जीवन मे प्रचण्डता मिलती, मिलती यहाँ प्रणति है।

देश-प्रेम का दीवाना, हर वीर यहाँ मतवाला,
वक्ष पिता-माता दोनों का है पजाब निराला।
पितृ-वक्ष-सा तन कर संकट सब के झेला करता,
यह जीवन के खेल, मौत के घर मे खेला करता।

पयोधरा धरती है इसकी माता के उर जैसी,
भूमि उर्वरा, फिर अकाल की यहाँ कल्पना कैसी?
कवि-कल्पना आज इस धरती पर ही विछल रही है,
और लेखनी इसके चित्रण-हित ही मचल रही है।

दृष्टि परिधि तक दिखती है, हरियाली ही हरियाली,
है सजीवता की प्रतिमा-सी, हर पत्ती हर डाली।
हर पौधे से बिखर रही है, ज्योति-किरण जीवन की,
मस्ती जगा रही हर मन मे, धारा मस्त पवन की।

यह गेहूँ का खेत लहरियाँ लेता है क्षण-क्षण मे,
आकर्षण है जाग रहा जैसे इसके कण-कण मे।
ढीठ पवन को देख, बालियाँ रह-रह शरमाती है,
कुल-वधुओ-सी सिमट सकुचित हो झुक-झुक जाती है।

ये बबूल के वृक्ष मेड़ पर ये पहरा देते है,
जो उलझे, ये संगीनो से तुरत खबर लेते है।
इन वधूओ पर अगर किसी की नजरे बुरी गड़ेगी,
ये बबूल की फलियाँ तलवारो-सी टूट पड़ेगी।

और साधुओ की जमात-सी यह मनहर अमराई,
काति-वृत्त-सी खिची बौर मिस वृक्षो की तरुणाई।
मादक महक सुयश-सी, देती रह-रह मौन निमत्रण,
जन-मन श्रद्धा सहज समर्पित होती विना नियत्रण।

खग-कुल का कल-नाद, नाम-सकीर्तन-सा प्रिय लगता,
स्वयं ठगा-सा रह जाता मन, नही किसी को ठगता।
कुहुक-कुहुक कर कोयलिया जब गा उठती पचम मे,
लगता जैसे कथा-भागवत ध्वनित सुखद सरगम मे।

यहाँ-वहाँ ये खड़े हुए है नीम सतरी जैसे,
ये रक्षक हो, रोग चोर बन कर आये तो कैसे ?
भरे निबौली की गोली, ये लेते रहते आहट,
ये अमृत के बेटे, गुणकारी इनकी कड़वाहट।

मक्खन की टिकिया
और
बम का गोला

यही एक जो गाव दिख रहा, हरा-भरा सुन्दर है,
जैसी बाहर सुषमा, वैसी ही इसके अन्दर है।
ईंट और मिट्टी से निर्मित यह जो एक भवन है,
भगतसिंह की जन्म-भूमि यह, जीवित क्रान्ति-सदन है।

जो मंजे पर बैठी, ये है भगतसिंह की माता,
धरे हाथ पर हाथ बैठना इनको नही सुहाता।
कुशल उँगलिओ से सलाइयों का करती संचालन,
इधर बुनाई और उधर मथित भीतर-भीतर मन।

मिट्टी के हाँडे से उलझी थी देवर की रानी,
झम्मर-झम्मर दधि-मथन थी चल रही मथानी।
आर्वतित-प्रत्यार्वतित उद्वेलित गहन तरलता,
विद्रोही स्वर फूंक रही हो जैसे स्निग्ध सरलता।

धवल छाछ के छींटे बाहर आते थे उड़-उड़कर,
वे शहीद हो-हो जाते थे घर से बिछुड-बिछुड़ कर।
मथन का क्रम रोक, वधू ने झाका घट का अन्तर,
स्वच्छ बुलबुले तैर रहे थे तरलित धवल सतह पर।

कर-पल्लव द्वारा बटोर कर उनको गया उछाला,
मक्खन का गोला दिखता था, जमा हुआ सा पाला।
मृदुल उँगलियो के दबाव से पानी निचुड़ रहा था।
मानो मक्खन रोता हो, जब साथी बिछुड़ रहा था।

दौडा-दौडा इसी समय लो, यह वालक आ धमका,
बालक क्या, जैसे हो चलता-फिरता गोला वम का।
लिपट गया अपनी चाची से फिर उसको झकझोरा,
बाल चपलता छोड, वाल अव करने लगा निहोरा।

"चाची ! चाची ! मेरी चाची ! मक्खन मुझे खिला दे,
ताजा-ताजा सोधा-सोधा, मुझको छाछ पिला दे।
गोरी-गोरी नरम हथेली उसने आगे कर दी,
चूम उसे, चाची ने भी मक्खन की टिकिया धर दी।

एक बार मे चट कर वैठा, फिर भी हाथ पसारा,
मजे पर बैठी माता ने अब उस ओर निहारा।
वोली, "क्यो रे भगत ! तग तू क्यो चाची को करता ?
कितना मक्खन खाता, तेरा तनिक नही मन भरता,

अरी बहिन ! क्यो तुमने इसको इतना ढीठ बनाया,
पीछा नही छोड़ने का यह, यदि सर इसे चढाना।
किन्तु वधू ने बालक को भर, छाती से चिमटाया,
मक्खन देकर, सुघड जिठानी को मन्तव्य सुनाया—

"जीजी ! देखो यह गुड्डा कितना प्यारा-प्यारा है,
प्यारा गुडडा, यह हम सव की आँखो का तारा है।
इसे खिलाने से सच मन को अद्भुत सुख मिलता है,
किसे सुहाता नही फूल जव डाली पर खिलता है।

कितने प्यारे-प्यारे लगते इसके वोल सुहाने,
कितनी निधियाँ इस आँगन मे आ जाती अनजाने।
उछल-कूद कर खेला करता है यह वाल-खिलौना,
वडा नाम पायेगा जीजी ! कभी सिह का छौना।"

गाँव के प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई समाप्त कर लेने के पश्चात् बालक भगतसिंह को लाहौर के डी० ए० व्ही० विद्यालय में प्रविष्ट कर दिया गया।

शान्ति या क्रान्ति ?

राजनीति पर बहस छिड गई उस दिन विद्यालय मे,
वैचारिक सघर्ष छिड़ा था, सब के शान्त हृदय मे।
था विवाद का विषय—"मुक्ति का पथ कौन सुन्दर है—
उग्र-नीति या शान्ति-साधना भारत को हितकर है ?"

कहा किसी ने, शान्ति-साधना का पथ चिर श्रेयस्कर,
भारत को स्वाधीन कराने, यह साधन ही दृढ-तर।
हिसा से, हिसक के मन को नही बदलना सम्भव,
करके घृणा, घृणित पथ पर ही सबका चलना सम्भव।

जिस दुश्मन की शक्ति असीमित, अपरिमेय हो साधन,
उसे जीतनें मत्र एक ही, मात्र सत्य आराधन।
करते रहें आत्म-बलिदानी अपने प्राण-विसर्जन,
मानव उर तो क्या, पत्थर मे भी सम्भव परिवर्तन।

अत. एक पर्वत से टकराने मे नही कुशलता,
लक्ष्य प्राप्त कर लेता वह, जो सोच-समझ कर चलता।
आज हमे जब गाधी जी से मिले सत्य के साधक,
विश्व-भावना द्वारा, मानव समता के आराधक।

अस्त्र अहिसा का ही उनका, हमे मुक्ति दे सकता,
भारत की तरणी, तूफानी सागर मे खे सकता।
यदि अभीष्ट हो मुक्ति, शान्ति पथ ही हम सब अपनाये,
सत्याग्रह द्वारा हम अपना विजय केतु फहराये।"

नरम नीति के प्रबल-पोषको को विचार ये भाये
किन्तु तर्क ये, उग्र-नीति वालो को नही सुहाये।
कहा उन्होने, "शठ को केवल उचित नीति है शठता,
दया-याचना निष्फल होती, जहाँ वरेण्य' विकटता।

दूध नाग को पिला-पिला, क्या वृत्ति बदल सकते हम,
सम्भव जीवन की रक्षा, यदि उसे कुचल सकते हम।
कितने दिन भेडिये अहिसक बन कर यहाँ जियेगे?
खून लगा जिनकी दाढो से, क्या वे दूध पियेगे?

जो ठुकराये प्यार, मार ही उसको आवश्यक है,
लोक-मान्य यह नीति, घोषणा करता आज 'तिलक' है।
रोटी के टुकडे मिल सकते, यदि हम हाथ पसारे,
राज्य न भिक्षा मे मिलते, अर्जित करती तलवारे।

राज्य माँग कर नही, जीत कर ही वे पाये जाते,
राज्य भोगते वे नर, जो है अपना खून बहाते।
छीने जाते राज्य, न वाजारो मे वे बिकते है,
नही राष्ट्र मे शक्ति अगर, तो राज्य नही टिकते है।

शान्ति न केवल सत्य, युद्ध भी सत्य बडा भारी है,
यह वह सत्य, मानता जिसको हर सत्ताधारी है।
युद्ध सत्य वह, जिसे वीरता से ही जाना जाता,
नही युद्ध को कभी भीरुता से पहचाना जाता।

उपदेशो से नही शत्रु का शमन हुआ करता है,
तलवारो से अन्यायो का दमन हुआ करता है।
जो झुकता है कायरता से, कटता वह मस्तक है,
वक्ष फुला कर चलने वालो को जीने का हक है।

पार दासता की करनी है यदि हम को वैतरणी,
तो तरणी है युद्ध, हमारे लिये एक ही करणी।
है आश्चर्य, आज के मोहन[1] शान्ति-नीति अपनाते,
कुरु-क्षेत्र मे सेनाओ को जब वे[2] रहे भिड़ाते।

गीता का उपदेश यही है, मारो या कि मरो तुम,
युद्ध सिधु के तीर वैठकर आहे नही भरो तुम।
विना वहाये खून, मान का शोध नही होता है,
विना वहाये खून, विजय का वोध नही होता है।

अत दासता की हथ-कड़ियाँ यदि अभीष्ट तड़काना,
यदि अभीष्ट खोई आजादी फिर से हम को लाना—
एक राह है, उसे छीन कर—लड कर ही ला सकते,
हाथ जोड कर, पैरो पडकर राज्य नही पा सकते।

और अगर पा भी जाये, तो फिर खोने का डर है,
इसी लिये उसको लड़कर ही लेना श्रेयस्कर है।
जिसे खून से अर्जित करते, उस पर ममता होती,
खून माँगता है रक्षा को, आजादी का मोती।"

ऐसे अगणित तर्क कर रहे थे प्रस्तुत दोनो दल,
सहसा वहाँ युद्ध जैसी ही मची भयकर हल चल।
झगड़े का क्या कारण था, यह नही समझ मे आया,
भगतसिह पर एक छात्र ने, अपना हाथ चलाया।

१. 'मोहन'=मोहनदास कर्मचन्द गाँधी।
२. 'वे' = भगवान श्रीकृष्ण, जो महाभारत युद्ध के सूत्र-धार थे।

वह जंगल का शेर भला यह कब सहने वाला था,
खाकर मार किसी की, वह कब चुप रहने वाला था।
एक हाथ के बदले उसने तगड़े कई जमाये,
हमला करने वाले के थे होश ठिकाने आये।

मिला न मन को चैन, झपट कर उसकी गर्दन पकडी,
अपने प्रबल शिकजे मे थी कस कर उसको जकडी।
उसकी दुर्गति देख, दौड कर कुछ अध्यापक आये,
दूर भगत को किया, क्रोध से उस पर धौल जमाये।

खडा प्रश्न-वाचक जैसा था, एक ओर वह पिट कर,
पूछ रहा हो जैसे, "चलना श्रेयस्कर किस पथ पर !
क्यो न सदा ही शान्ति-नीति है यहाँ सफलता पाती ?
कौन विवशता, दड-व्यवस्था आवश्यक हो जाती ?"

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी'...

जीवन की आशा ही कैसी, जव रक्षक भक्षक वन जाये,
फसल कहाॅं से लहराये, जव वागड स्वय खेत को खाये।
अत्याचारी वने वही, जिस पर हो वाग-डोर शासन की,
जनता करे कल्पना कैसे, अपने लिये सुखी जीवन की ?

शासन क्या है ? यह शासक का जन्म-सिद्ध अधिकार नही है,
शासन, शासक का मन-मानी करने का अधिकार नही है।
शासन केवल दमन नही है, जन-शुभ-चिन्तन ही शासन है,
न्याय-व्यवस्था के रक्षण का, शासन एक उचित साधन है।

किन्तु व्यवस्था और न्याय का, शासन ही जव गला दवाये,
शान्ति-सुरक्षा को पैरो से कुचल-कुचल जव वह इठलाये।
तो वह शासन, शासन कैसा ? एक लुटेरो का ही दल है,
वहाँ नीति का नाम नही है, शासन-नीति मात्र छल-वल है।

शासित करे सहन क्यो उसको ? क्यो न विप्लवी ज्वाला भड़के ?
जन-मानस विक्षुब्ध न हो क्यो ? क्यो न रोष की विद्यु्त तड़के ?
क्यो न भूख जागे जनता की, ऐसे शासन को खा जाने ?
जन-आक्रोश प्रलय-घन वन कर क्यो न उठे लावा वरसाने ?

शासन जन-हिताय होता है, जनता उसे वदल सकती है,
यदि शासक अत्याचारी हो, जनता उसे कुचल सकती है।
यही अर्थ शासन का, भारत की जनता है रही लगाती,
अनय और अन्यायी, दोनो को वह रही सदा ही खाती।

फिर अन्याय विदेशी के वह कैसे सह लेती चुप होकर ?
कैसे संभव था चुप रहना अपनी आजादी को खोकर,
भारत ने तेवर बदले है, जब-जब ऐसे अवसर आये,
दु शासन को चला निगलने प्राणो मे तूफान उठाये।

राष्ट्रीय अपमान हुआ जब, उसके प्राण सदा तडपे है,
अपने महा-उदर मे उसने अन्यायी शासक हडपे है।
आज प्राण मचले थे उसके अत्याचारो को खा जाने,
आज प्राण मचले थे उसके, धरती की आजादी पाने।

जहा शान्ति ने सिद्धि न पाई, मचली वहाँ क्रान्ति की धारा,
मानवता ने आख बदल कर, दानवता को है ललकारा।
बाँध-बॉध कर कफन सरो से, उठे क्रान्ति के है दीवाने,
गोले नही, प्राण ही जैसे, चले शत्रु पर वे अर्राने।

आज धडाका हुआ यहा यदि, कल भीषण बम गिरा वहॉ पर,
सर-सर लगी फैलने लपटे, शासन रोके किसे कहॉ पर ?
पॉव लड-खड़ाये शासन के विस्फोटो से सर चकराया,
लगा, भवन साम्राज्यवाद का जैसे अब धरती पर आया।

लगा कि जैसे स्वप्न-कँगूरे टूट-टूट कर अब गिरते है,
लगा कि जेसे कुछ दिन मे ही, अब भारत के दिन फिरते है।
गिरते-गिरते किन्तु विदेशी सम्हल गया कुछ धक्के खाकर।
सम्हल गया, वह दमन-चक्र को भीपणता से यहॉ घुमा कर।

जिसने भी सर तनिक उठाया, उस पर जो पर्वत टूटा,
उस पर दमन-तोप से जैसे, लक्ष्य साध कर गोला छूटा।
उठी बाढ तोपो गोलो की, पडी गोलियो की बौछारे,
प्यास बुझाई सगीनो ने, मनुज-रक्त की उड़ी फुहारे।

दमन-चक्र जब चलता है तो वह फिर बस चलता ही जाता
पीस डालता है वह सब को, जो उसके चक्कर में आता।
और चलाने वाला, अपनी आँखे बन्द किये रहता है,
नशा चढा होता विनाश का, वह जन-रक्त पिये रहता है।

सभी मौत के घाट उतरते, बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी,
इनमे भेद नही करता है, कोई भी हो अत्याचारी।
यही हाल था, जब भारत के सिंह-सपूत हुए मतवाले,
भूने गये गोलियों से वे, संगीनो पर गये उछाले।

इधर एक बम फटा अगर, तो उधर गये वे दस लटकाए,
भूख लिये युग-युग की सुरसा, टूट पड़ी इन पर मुँह बाए।
हाथो-पैरो मे जजीरे, मन पर ताले गये लगाये,
गोरे तन वालो ने अगणित थे काले कानून बनाये।

गला न्याय का घोट रहे थे, न्याय-विधायक खुल्लम-खुल्ला,
एक अस्त्र था—दमन सभी का, पडित हो ग्रथी या मुल्ला।
मानवता का ढोल पीट कर, शासन होता था पशु-बल से,
था मारीच बना कचन-मृग, लुभा रहा था सबको छल से।

शोषण बना लक्ष्य शासन का, वह जन-रक्त निचोड रहा था,
वह अपने अत्याचारी शर, एक-एक कर छोड रहा था।
अधिकारो से नाम, भीख के टुकडे केवल दिखा रहा था,
और विश्व के इतिहासो मे, अपना गौरव लिखा रहा था।

नाम न्याय का लेकर बन्दर, सबकी रोटी हड़प रहा था,
और भूख से व्याकुल होकर देश हमारा तडप रहा था।
सोने की चिडिया के सारे पख वधिक वह नोच रहा था,
अपने पैने नाखूनो से उसका मांस खरोच रहा था।

रौलट बिल !
हाय ! हाय !

घडा पाप का भरते-भरते, भर कर स्वत· फूट जाता है,
नही जोडने से जुडता वह, यदि विश्वास टूट जाता है।
यदि विद्रोह जाग बैठे तो उठ कर छोटी-सी चिनगारी,
लपटो मे परिवर्तित हो कर खा सकती है दुनिया सारी।

दलित भावनाएँ ही उठ कर, क्रान्ति-ज्वाल बनकर लहराती
विद्रोही आँधी के बल से, लहर-लहर कर वे हहराती।
क्रुद्ध शान्ति की भूखी लपटे, अन्यायी का भक्षण करती,
शोषित, दलित और पीडित के, अधिकारो का रक्षण करती,

यह जो रौलट बिल आया था, जन-स्वतन्त्रता पर प्रहार था।
हम इसको कानून कहे क्यो, यह जेलो का खुला द्वार था,
लोगो का सम्मान सुरक्षित इससे रहा नही किंचित था।
भारत का जन-जीवन, अगणित आशकाओ से चिन्तित था,

यह रौलट विचार-धारा थी, खुली व्यवस्था दड-दमन की,
डडे का शासन करता था सबसे आशा यहाँ अमन की।
दमन प्रभावी हो सकता है, पीडित और दलित के तन पर,
किन्तु न शासन कर सकता है, वह उसके विद्रोही मन पर।

जन-मन क्रान्ति-भावना भडकी, छिडा एक भीषण आन्दोलन,
रोके रुका न रोष हृदय मे, प्रकट हुआ बन विकट प्रदर्शन।
क्या गाँवो मे, क्या शहरो मे, क्या घर-बाहर बाजारो मे,
खोल-खोल कर रोष हृदय का बाहर आता था नारो मे।

लो, अमृतसर आज गरल को आत्मसात् करने उमड़ा है,
यह आक्रोश अहिंसक, शासन को निपात करने उमडा है।
जलियाँ वाला बाग बन गया जनता का लहराता सागर,
ये पंजाबी सिंह करेंगे आज यहाँ निज रक्त उजागर।

गरज उठा नरसिंह एक, "यह रौलट बिल कलुषित कलंक है,
है कुत्सित अभिशाप एक यह, और घृणित यह पाप-पंक है।
जनता की स्वतन्त्रता पर है, यह घातक प्रहार पशु-बल का,
भारत ने कंचन के घट में पाया है उपहार गरल का।

असम्मान की दूषित छाया है यह भारत के गौरव पर,
आज एक होकर हम सब को देना है इसका दृढ उत्तर।
जिसने बारूदी प्राणो मे डाली विप्लव की चिनगारी,
भिक्षा-पात्र बढाया जिसने, छिपा बगल मे तेज कटारी।

जिसने कफन उढाया दफना कर मानव के विश्वासो को,
जला रहा जो फाड-फाड़ कर जग के उज्ज्वल इतिहासो को--
उसको आज बतादे हम भी, हम न मात्र मिट्टी के पुतले,
जो अपना है, उसको लेने अब मतवालो के दल निकले।

बरसे आग, उठे ज्वालाएँ, हमे नही उनका कुछ डर है,
कोटि-कोटि कण्ठों से मिल कर, उठता आज एक यह स्वर है
"क्षय हो इस साम्राज्यवाद का, इस नौकर-शाही का क्षय हो
भारत-माता की चिर जय हो ! जागरूक जनता की जय हो !"

गूँज रहा वह क्रान्ति-सदन था इसी भाँति जय-जयकारो से,
गूँज रहा था, वह कर्मस्थल नर-वीरो की हुँकारो से।
पर कैसे सम्भव था शासन के न कान उसको सुन पाते ?
कैसे सम्भव था न दमन का दानव अपना चक्र चलाते ?

क्रुद्ध प्रान्तपति ओडायर ने, जनरल डायर[1] को बुलवाया,
मानवता के हत्यारे ने जल्लादी आदेश सुनाया।
मृत्यु-दूत डायर आ धमका, ले गोरी-काली सेनाएँ,
लगे लपलपाने सैनिक-दल अपनी अग्नि-मुखी जिह्वाएँ।

था केवल सकीर्ण एक पथ, जो प्रवेश भी था—निर्गम था,
इसी द्वार से ही प्रवेश कर, मृत्यु-दूत पहुँचा निर्मम था।
द्वार रोक सैनिक दल सज्जित हुए एक ऊँचे टीले पर,
निर्दोषो का खून बहाने, पाया था अलभ्य यह अवसर।

गरज रहा था हसराज तब, "क्षय हो इस साम्राज्य-वाद का!
क्षय हो इस बहरे शासन का, क्षय हो इस अन्धे प्रमाद का।"
तभी सनन्-सन् चली गोलियाँ इन दृढ नारो के उत्तर मे,
बन्दूको ने ताल मिलाया, जनता के आक्रोशी स्वर मे।

धाँय! धाँय! बोली पिस्तौले, हाय! हाय! मानव चिल्लाये,
गोली की अनवरत बाढ ने वहाँ शवो के ढेर लगाये।
इधर शस्त्र-धारी सवार थे, उधर सभी वे लोग निहत्थे,
लगे छातियाँ छलनी करने, लगे फोडने उनके मत्थे।

ये नृशस, बर्बर अरि-सैनिक खुले आम कर खून रहे थे,
अंगारे बरसा, लोगो को होले जैसे भून रहे थे।
भेद नही था नर-नारी का, भेद न था बूढे जवान का,
गोली खा-खा मानव गिरते, कटता जैसे खेत धान का।

मौत भूख निज मिटा रही थी, वह मानवता को खाती थी,
मनुज रक्त पीकर दानवता फुला रही अपनी छाती थी।
लो यह गोली लगी, वीर वह गिर धड़ाम धरती पर आया,
और एक के बाद दूसरे ने भी उस पथ को अपनाया।

---

१. १३ अप्रेल १९१९ ई० को जनरल डायर के नेतृत्व मे जलयानवाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ।

हुई दना-दन्, चली गोलियाँ, जैसे वर्षा अर्राई हो,
जीवन के घर दुखद मौत की जैसे विकट बाढ आई हो।
शोणित के अगणित फव्वारे मानव-तन से फूट रहे थे,
प्यास वुझ रही दानव-दल की, वे अद्भुत सुख लूट रहे थे।

दीवाने दम तोड रहे थे, भू पर गिर छटापटा रहे थे,
धरती की मर्यादा रखने अपनी हस्ती मिटा रहे थे।
हाय ! हाय ! हो रही प्रति-ध्वनित, चीत्कार के स्वर उठते थे,
लाशों के अंबार लग रहे, लोहू के निर्झर उठते थे।

माताओ ने सुत खोए थे, वहिनो ने खोए थे भाई,
माताओ-बहनो को खाकर, दानवता थी नही अघाई।
जब गोलियाँ चुक गई सब, हत्यारो ने संगीन सम्हाले,
माँ की छाती से जो चिपटे, वे शिशु उन पर गये उछाले।

घोडो की टापो से कुचले गये पिता, वहिने, मातायें,
खून चढा था उन आँखो मे नाच रही थी नर-हत्यायें।
खुल कर नृत्य हुआ हिंसा का, और अहिंसा जी भर रोई,
मानवता पर लगे घाव को, कैसे भूल सकेगा कोई ?

सौ-पचास की गिनती ही क्या, ऐसे गये कई सौ मारे,
फिर भी चैन न मिला दनुज को, तृप्त न हो पाये हत्यारे।
शव सहस्रश: अगणित घायल नही वहाँ से गये उठाये,
वहाँ रात भर पहरा देकर, उनके प्राण गये तड़पाये।

जो घायल थे, पानी ! पानी ! चिल्ला कर दम तोड रहे थे,
वे पानी को तरस-तरस कर विकल प्राण निज छोड़ रहे थे।
किन्तु रक्त के इन प्यासो ने, दिया न उन्हे बूंद भर पानी,
ठण्डे हुए बुढ़ापे-बचपन, न्यौछावर हो गई जवानी।

कथा-क्रम

जलयान वाला बाग हत्याकाण्ड के समय भगतसिह की अवस्था लगभग बारह वर्ष की थी। वह अमृतसर से शहीदों की खून से सनी हुई मिट्टी ले आया और एक बोतल मे रख कर उसकी पूजा नित्य छिप कर करता था। एक दिन उसकी छोटी बहन बीबी अमर कौर ने उसे देख लिया। न चाहते हुए भी भगतसिह को भेद बताना ही पडा।

मुर्दे बोल उठे

"बहन सुना ही होगा तूने हुआ काण्ड जा जलयाँ वाला,
किसी निर्ममता से भारत का रक्त वहाँ पर गया उछाला।
मिट्टी कैसे सनी रक्त से उस जलयाँ वाले उपवन की,
कैसे-कैसे व्यथा सुनाऊँ, बहन तुम्हे मै अपने मन की।

पहली बार वहाँ जीवन मे, देखे थे मैने इतने शव,
पहली बार वहाँ जीवन मे, देखा था आहो का अर्णव।
चारो ओर पडे शव ही शव, वहाँ दृष्टि-गोचर होते थे,
धाड मार कर प्रिय-जन पुरजन उनको देख-देख रोते थे।

कोई शव पर गिर-गिर पडता, कोई मस्तक फोड रहा था,
कोई खडा-खडा प्रस्तर-वत्, दीर्घ उँसासे छोड रहा था।
चिथडे-चिथडे हुए कई शव, कोई गोलियाँ लग जाने से,
लोगो को लग नही रहे थे, वे निज जाने-पहचाने से।

पडा हुआ था कोई औधा, अपने हाथ-पैर फैलाए,
पडा हुआ था कोई सीधा, बिखरे बाल और मुँह बाए।
किसी-किसी की गर्दन भू पर एक ओर को लटक गई थी,
खा गोली की चोट, खोपड़ी किसी-किसी की चटक गई थी।

वँधी मुट्ठियाँ किसी-किसी की, हाथ किसी के खुले हुए थे,
वदला लेने की मुद्रा मे दिखते कोई तुले हुए थे।
मिट्टी और खून से लथ-पथ पडे हुए थे कुछ अध-नंगे,
लगता था जैसे सोए हो थक कर होली के हुड़दगे।

क्रोधित आँखे किसी-किसी की, वहाँ खुली की खुली रह गई,
पुतली मे अकित पिशाच-लीलाएँ मन की व्यथा कह गईं।
कहती थी वे आँखे—"हम थे निरपराध, हम को क्यों मारा ?
हमे मार कर ठंडी छाती कर लेगा कैसे हत्यारा ?"

कहती थी वे आँखे—"जो जीवित है वे इसका वदला ले,
इस उद्दाम निरकुश शासन को शासन का ठीक सबक दे।"
कहती थी वे आँखे—"हिसक नही प्रार्थना से मानेगे,
नर-भक्षी भेड़िए अहिसा की वाणी क्या पहचानेगे।

ये तो तव मानेगे, जव इनकी गर्दन नापी जायेगी,
ये तो तव मानेगे—इनको भूख हमारी जव खायेगी,
कहती थी वे आँखे—"इनसे सधि-वार्ता सब निष्फल है,
उत्तर दे मुँह-तोड इन्हे हम, यही समस्या का अब हल है।"

खुली-खुली आँखे कहती थी—"समझो, सुनो, देखने वालो !
यह सघर्ष न रुकने पाये, ओ आजादी के मतवालो !
जव तक इस वर्वर शासन का गर्व न मिट्टी मे मिल जाये—
जव तक अपनी पुण्य-भूमि पर अपना केतु नही फहराये—

तव तक प्राण होमते जाएँ महा-यज्ञ मे भारत-वासी,
सूली के फूलो के, फाँसी के भूलो के हो अभ्यासी।
इन वलिदानो से फिर अपने उपवन मे वहार आयेगी,
प्राणो की उन्मुक्त कोकिला फिर अपने स्वर लहरायेगी।

लो, हम तो चल दिये किन्तु यह याद रखें सब जीने वाले,
मुर्दों से बदतर होते है अपमानो को पीने वाले।"
सुना बहिन! मरने वालो की आँखे ने सन्देश दिया यह,
करने का या मरने का ही आँखो ने उपदेश दिया यह।

आगे तुम्हे बताऊँ अब क्या उनकी दशा हुए जो घायल,
देख-देख कर उनकी गति को, प्राण हो उठे मेरे पागल।
हाहाकार मचा था भीषण घायल पडे कराह रहे थे,
पीडा से छटपटा-छटपटा, मौत स्वय ही चाह रहे थे।

कोई हाय! हाय! चिल्लाते, कोई छाती कूट रहे थे,
पानी! पानी! रटते-रटते प्राण किसी के छूट रहे थे।
कोई घायल माँ मृत बच्चे को छाती से थी चिमटाये,
बिलख रहा कोई घायल शिशु, मृत माँ उसको क्या समझाये?

हाय राम! की हाय राम! की कही उठ रही करुण पुकारे,
क्रोध और प्रतिशोध-प्रज्ज्वलित सुन पडती अगणित फुँकारे।
किसी-किसी के घायल तन से, रिस-रिस कर था रक्त बह रहा,
करुण-कथा अत्याचारो की बह-बह कर था रक्त कह रहा।

गिर-गिर पडता था कोई निज उठने के असफल प्रयास मे,
कोई-कोई छाती के बल सरक रहा था वही पास मे।
ऐसा दृश्य कभी जीवन मे मैने देखा-सुना नही था,
पहली बार वहाँ जो देखा, वैसा देखा नही कही था।

बहिन! वहाँ जो मैंने देखा, सम्भव नही सभी कह पाऊँ,
मन मे आया क्यो न किसी की गोली खा मैं भी सो जाऊँ?"
"भैया! तुम यह क्या कहते हो, ऐसी अशुभ बात मत बोलो,
अभी बहुत कुछ करना तुमको, जहर निराशा का मत घोलो।"

"वहिन मुझे कुछ अशुभ नही अव, मृत्यु खेल लगता जीवन का,
कुछ विचित्र हो गया हाल है इस घटना से मेरे मन का।
और वहाँ जो मरे, किसी के होगे वे भी तो प्रिय भाई,
किन्तु हो गया जो होना था, उनने वडी वीर-गति पाई।

मैंने तो सकल्प कर लिया वहाँ तभी, मरना तो है ही,
पिजडा छोड प्राण के पंछी को प्रयाण करना तो है ही—
भूल न पाये जिसको सदियाँ, मैं ऐसी ही मौत मरूँगा।
अपने शोणित मे धरती की आजादी की माँग भरूँगा।

मेरी मौत यहाँ जीवन की फुलवारी-सी खिल जायेगी,
अगर मरूँगा मैं, तो इस शासन की जड भी हिल जायेगी।
वाल-कल्पना नही वहिन यह, यह मेरा सकल्प अटल है,
है भविष्य मेरी मुट्ठी मे, मुझ पर विश्वासो का वल है।

उन्ही शवो के वीच वैठ कर, मैंने जीवन का व्रत ठाना,
वहाँ मृत्यु के अधकार मे, मैंने अपना पथ पहचाना।
जो सकल्प किया है मैंने, यह मिट्टी दे रही गवाही,
इससे पूछो, यह कह देगी, मैंने मौत कौन-सी चाही।

यह मिट्टी है जो कि शहीदो के शोणित से सनी हुई है,
यह मिट्टी, मेरे जीवन के लिये प्रेरणा वनी हुई है।
वहिन, वहाँ से लौटा मै तो, वहुत वडी निधि ले आया हूँ,
जो यह दिखती रक्त-रजिता, पावन मिट्टी भर लाया हूँ।

रूप की नगरी बम्बई में आक्रोश की लपटें

यह कौन महा-नगरी रचना-वैभव की ?
नगरी है या तस्वीर रूप-आसव की ?
जीवित, ज्वलन्त, जाग्रत सुन्दर सपने-सी
सर्जना भव्यतम यह श्रम-रत-मानव की ।

सुनिए जनाब ! बम्बई इसे कहते है,
नगरी यह, जिसमे धन-कुबेर रहते है,
गर्जना यहाँ करती है प्रबल तरगे
मन की उमङ्ग मे लोग यहाँ बहते है ।

जीवन-सागर-सी यह सागर के तट पर,
लगती है पनिहारिन-सी यह पन-घट पर,
जी इस पर ललचाया करता है ऐसे
मँडराया करते मन जैसे घूँघट पर ।

खारे जल मे भी यह मिठास भर देती,
साँसो मे यह मादक सुवास भर देती,
पीने वालो की तृषा नही बुझती, यह
दो घूँट पिला कर अमिट प्यास भर देती ।

सुन्दरता मे इसका कोई क्या सानी ?
है इन्द्र-पुरी भरती इसके घर पानी ।
नारियाँ नही, है यहाँ रानियाँ रहती
यह नगरी जैसे स्वयं रूप की रानी ।

नजरो का रहता यहाँ रूप पर पहरा,
असहाय रूप भोला-भाला जो ठहरा,
जिसको देखो, उसका मन रँगा हुआ है
है यहाँ प्यार का रङ्ग वहुत ही गहरा ।

तिरते रहते है स्वप्न यहाँ नजरो मे,
करते सेलानी सैर यहाँ वजरो मे,
केवल न फूल ही गुँथे हुए रहते हे
लोगो के मन भी गुँथ जाते गजरो मे ।

जिसको देखो, वह कलाकार दिखता है,
आँखो मे अल्हड-सा खुमार दिखता हे,
जव लोग झाँकते दिल के आईने मे
तो वहाँ किसी का उन्हे प्यार दिखता है ।

रस की गगरी, यह नगरी दीवानो की,
अपनी मस्ती मे डूवे मस्तानो की,
तस्वीर लेखनी क्या उतार पायेगी
इसके सपनो की, इसके अरमानो की ।

पर जीवन मे केवल न प्यार ही संवल,
सघर्पो की भी इसमे भीपण हल-चल,
मनुहार-प्यार ही इसके रूप नही है
है लिये घृणा भी जीवन का यह अचल ।

है यहा घृणा करता मानव-मानव को,
ढोता समाज है अर्थ-नीति के शव को,
मधु के वदले जव जहर घुल गया है तो
क्या यहाँ वैठकर चाटे मनुज विभव को ?

मानव के उर मे असुर पला करते है
मन मे विध्वसक स्वप्न ढला करते है,
जिनके बल पर हमने ऊँचाई पाई,
हम चलते तो उनको कुचला करते है।

ऊँचे ऊँचे ये जो अति भव्य भवन है,
अपनी ऊँचाई से छू रहे गगन है,
श्रम की समाधि इनको कहना अनुचित है,
ये महल नही, श्रमिको पर पड़े कफन है।

मानव-मानव मे ये कैसी दीवारे?
जय-ध्वनियो मे ये कैसी हाहाकारे?
क्यो मान-चित्र बन गया नर्क का तब-तब
जब-जब चाहा धरती पर स्वर्ग उतारे।

किसने समाज मे प्रखर हलाहल घोला?
सपनो पर किसने रखा आग का गोला?
यह कौन स्वाँग रच रहा देवताओ का
यह छिपा रहा है कौन दनुज का चोला?

यह घड़ा पाप का हमे फोड़ना होगा,
आग्नेय-वाण अब हमे छोडना होगा,
अधिकार-वाद का किला खडा छाती पर
करके प्रहार यह किला तोडना होगा।

फिरंगी युवराज का बहिष्कार

लो सुनो शासनादेश आज आया है,
गौराङ्ग महाप्रभुओ ने फरमाया है,
लन्दन से शाही अतिथि पधार रहे है,
इस दलित देश ने शुभ अवसर पाया है।

युवराज बहादुर[1] भारत मे आयेगे,
दर्शन देने वे यहाँ-वहाँ जायेगे,
उनके स्वागत के लिए सभी दिल खोले,
वे कृपा दृष्टि निज आकर बरसायेंगे।

हो स्वागत उनका जयध्वनि के नारो से,
हो स्वागत उनका शुभ वन्दनवारो से,
बरसाये उन पर लोग फूल बरसाये
सब लोग उन्हे लादे सुरभित हारो से।

कल-कण्ठ गीत उनके स्वागत के गाये,
निज पलक-पाँवड़े पथ पर लोग बिछाये,
यदि 'पलग-पीठ तज' धरें पाँव वे भू पर
भारत वासी उनके तलुए सहलाये।

---

१. प्रिंस ऑफ वेल्स १७ नवम्बर १९२१ को भारत आए थे। उनके आगमन का भारत के कई स्थानो पर बहिष्कार किया गया और विरोध मे कई प्रदर्शन हुए।

यह समाचार पहुँचा भारत के घर-घर,
हो गये लोग अगवानी के हित तत्पर,
युवराज बहादुर का अपूर्व स्वागत हो
आश्चर्य चकित होकर देखे दुनिया भर।

इस असहयोग के युग मे उनका स्वागत?
क्या न्यायी हो अन्यायी को श्रद्धानत?
क्या रहा-सहा सम्मान न पुँछ जायेगा?
क्या नही जमाना देगा हमको लानत?

इन भावो से थे भड़क उठे दीवाने,
पिंजडो के बन्दी सिंह लगे गुर्राने,
शासनादेश की ठेस लगी जब दिल मे,
वे लौह-सीखचो को सब लगे चबाने।

बम्बई महानगरी मे पहला स्वागत,
लो, लन्दन से आये शाही अभ्यागत,
लोगो के मन मे लगी क्रोध से बिजली,
अगवानी के हित घृणा हो गई जाग्रत।

अत्याचारो की मार पड़ रही जब हो,
शासन के मन मे घृणा सड़ रही जब हो,
तब कहते वे हम हँसे और मुसकाये
आँखो पर लोहू-धार चढ रही जब हो।

काले-गोरे का जब बढ भेद रहा हो,
जब व्यंग्यो से कोई उर छेद रहा हो,
हम बढकर उसको कैसे गले लगाये
जो अपमानो से दर्द कुरेद रहा हो।

ये भाव सभी के लगे उरो मे जलने,
ज्वालाये फैला दीं प्रतिशोध-अनल ने,
जा डटे वीर सब लिए सत्य का आग्रह
आक्रोश-घोष के गोले लगे उगलने—

"युवराज फिरगी ! जाओ ! वापिस जाओ !
निज घृणा-विदूरित मुख न हमे दिखलाओ !
पुण्यो से सिंचित इस पावन धरती पर
कुत्सित कलक के घन वन कर मत छाओ !

वापिस जाओ तुम इस भारत की भू से,
झुलसाओ मत तुम इसे द्वेष की लू से,
तुम मुस्कानो का जाल बिछाते हो, पर
दुर्गन्ध घृणा की है आ रही लहू से।

अपना मायावी जाल न यहाँ बिछाओ।
विद्वेप गरल की धार न यहाँ बहाओ !
कुछ व्यक्ति नही, यह भारत बोल रहा है
युवराज बहादुर ! जाओ ! वापिस जाओ !

जो गूँज उठे थे स्वागत को, ये स्वर थे,
जलते मशाल-से, लोगो के अतर थे,
मन जिसका काला, उसके स्वागत के हित
फहराते काले झण्डे भी फर-फर थे।

'वापिस जाओ' के स्वर से ध्वनित गगन था,
वापिस जाओ ! कह रहा यही जन-जन था,
वापिस जाओ ! वापिस जाओ ! के स्वर का
सब दिशा और विदिशाओ मे गर्जन था।

युवराज बहादुर चिन्तित थे सुन-सुन कर,
पछताते थे वे अपना सिर धुन-धुन कर,
जो घुमड़ रहा था क्रोध अतिथि पर, उसके
बरसाते थे सब लोग फूल चुन-चुन कर।

गलियो-सडको-चौराहो पर ये नारे,
लोगो ने क्रोधित हो-हो कर उच्चारे,
रोके न रुके, दीवाने ऐसे भडके
होते उपाय शासन के निष्फल सारे।

नगरी मे थी विक्षुब्ध रोष की छाया,
जन-सागर मे था भीषण ज्वार उठाया,
जो चन्द्र-किरण-सा रूप सुशीतल लगता
उसने था अपना प्रखर रूप दिखलाया।

वह रूप-नागरी-नगरी उबल रही थी,
जन-मन भावो की दुर्गा मचल रही थी,
जो असन्तोष की आग हृदय मे धधकी
वह आग अतिथि पर जनता उगल रही थी।

कुछ भाडे के टट्टू, जय बोल रहे थे,
पर, देश-भक्त रस मे विष घोल रहे थे,
कुछ लाल पगडियाँ बान्ने किरचे लेकर,
आतंक जमाने अपना, डोल रहे थे।

संकेत मिल गया, अब सैनिक-दल छूटे,
भोली चिडियो पर प्रबल बाज थे टूटे,
बरसी थी अंधा-धुंध लाठियाँ उन पर
लोगो के सर लाठी खा-खा कर फूटे।

पर फिर भी माने नही तनिक मतवाले,
दिखलाते थे बढ-बढ कर झण्डे काले,
शासन के पण्डो के निर्मम डण्डे भी,
लोगों के मुँह पर डाल न पाये ताले।

फिर वही 'लौट जाओ' की ध्वनि घहराई,
धरती से नभ तक थी ध्वनि यही समाई,
शासन ने जितना-जितना दमन प्रचारा,
जनता उतनी-उतनी अपनी पर आई।

अब थे बन्दूकों ने अपने मुँह खोले,
भुन रहे लोग थे, जैसे भुनते होले,
वे सत्य व्रती थे डटे आन पर अपनी
गोली-वर्षा से उनके हृदय न डोले।

गोली खाकर कुछ वीर भूमि पर सोए।
खुश होते थे गोरांग दूध के धोए (?)
जो मरे—मरे वे अपनी धरती के हित
थे व्यर्थ उन्होने अपने प्राण न खोए।

यह दमन, बम्बई तक न रहा सीमित था,
इस क्षय से पूरा भारत ही पीड़ित था,
सुख-चैन लोग पाते तो कैसे पाते?
जब दमन फिरंगी के मन मे जीवित था।

युवराज जहाँ भी गये वहाँ स्वागत यह,
अपमान हो रहा था, उनको यह दुस्सह,
भारत के प्राणों को नासूर बने वे
पीड़ा कचोटती थी लोगों को रह-रह।

वे गये जहाँ, हड़तालो का ही क्रम था,
लोगो के मन मे घृणा-भाव क्या कम था।
विद्वेष जाग बैठा था जन-मानस मे
उपचार नही उसका निर्मम उपशम था।

जल उठी विदेशी वस्त्रो की थी होली,
कानून भग करती वीरों की टोली,
मन की उमग को रोक नही पाती थी
लाठी की वर्षा, बन्दूको की गोली।

शासन का रुख जनता को अखर रहा था,
जन-आन्दोलन प्रतिपल हो प्रखर रहा था,
आक्रोश समाहित था जो जन-जीवन मे
इस आन्दोलन द्वारा हो मुखर रहा था।

●

लाल पगड़ी वालों की होली

सत्याग्रह के नेता की सुन कर बोली,
जनता थी उसके पीछे-पीछे हो ली,
प्रस्ताव बारदोली[1] मे पारित करके
गाधी जी ने थी नई गाठ अब खोली।

जन-नायक ने थी यह आवाज लगाई,
"जेलो से हो लोगो की शीघ्र रिहाई,
जो अर्थ-दण्ड का चक्र चल रहा भीषण
जनता को जाये उससे मुक्ति दिलाई।

कृषको पर लादे गये भूमि कर रोको,
दयनीय दशा उनकी तो तनिक विलोको,
टोको न उन्हे चल रहे शाति-पथ पर जो
जो उन्हे त्रस्त कर रहे उन्ही को टोको।

सीखो मानवता अन्य सभ्य देशों से,
दो मुक्ति मनुज को दानवीय क्लेशों से,
मत यो निरीह जनता का गला दबाओ
अपने इन निर्मम हिंसक आदेशो से।

---

१. बारदोली—उत्तर प्रदेश का एक तात्लुका जहाँ गांधी जी ने अहिंसक-आन्दोलन की योजना बनाई थी।

होकर तटस्थ कुछ चर्चा करो अमन की,
यह नीति छोड हिंसा की और दमन की,
पतझड़ के अंधड बन कर यो मत हडपो
शोभा-श्री भारत के इस भव्य चमन की।

वार्त्ता आज हम मानवता के नाते,
हैं सन्धि हेतु तुमसे इस भांति चलाते,
अन्यथा अहिंसक आन्दोलन के पथ पर
वढ़ जायेंगे नर-सिंह सभी गुर्राते।"

सत्परामर्श यह शासन ने ठुकराया,
औषधि-निदान रोगी को नही सुहाया,
ये लक्षण होने लगे प्रकट अब क्षय के
होती विकार से ग्रस्त-नित्य थी काया :

हो गया अवश्यम्भावी था सत्याग्रह,
था सह्य शांति का नही किसी को विग्रह,
वढ चली अहिंसा आज प्रबल हिंसा का
करने अपने सदुपायो मे दृढ निग्रह।

जनता आतुर थी, करती वह क्यों देरी ?
चौरी-चौरा[1] मे वजी युद्ध की भेरी,
छिड़ गया युद्ध सत्याग्रह का था भारी
जन-जाग्रति अहरह लगा रही थी फेरी।

---

१. चौरीचौरा=उत्तर प्रदेश मे गोरखपुर के निकट एक गाँव जहाँ शान्त आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया और परिणामस्वरूप कई पुलिस वाले जीवित जला दिये गये। यह घटना ५ फरवरी १९२२ ई० को हुई थी।

चल-समारोह सज गया शीघ्र तूफानी,
आ जुडे सहस्रो वीर विकट-वलिदानी,
थे गरज उठे नर-वीर रोप खा-खाकर
"हम नही सहेगे शासन की मनमानी।"

थी डूब रही जनता जय-जयकारो मे,
संकल्प-भावना हुई ध्वनित नारो मे,
दिशि-विदिशाओ मे जय-ध्वनि गूंज रही थी
चौरी-चौरा की गलियो बाजारो में।

था एक तिरगा भी नभ मे फहराता,
दल उसको लेकर चलता था इठलाता,
जय-ध्वनि आती यदि एक कण्ठ से उठकर
वह नारा था पूरा समुदाय लगाता।

जय की ध्वनियो से थर्रा रहा गगन था,
थर्राता जय-ध्वनि से शासन का मन था,
छाती पर उसकी कोई मूँग दले यो
अत्याचारी को कब यह कृत्य सहन था ?

आ समारोह को घेरा सैनिक-दल ने,
लोगो को ललकारा हिसा के वल ने,
निर्दोष-निहत्थे लोगो के सर पर अब
लो, लगी लाठियाँ निर्ममता से चलने।

यह चोट न थी केवल लोगो के मन पर,
थी असहनीय यह चोट सभी के तन पर,
भावना तिरोहित व्यक्ति-व्यक्ति की अब थी
अब क्रुद्ध भीड़ जनता की वढ़ी उफनकर।

ललकार उठा नर-नाहर एक गरजकर—
हिंसक प्रवृत्ति का देना होगा उत्तर,
हमको मरना कुत्तो की मौत नही है।
लाठी का बदला लेगे, देकर पत्थर।

बदला लेना उनका, जिनके सर फूटे,
हम पर ये हत्यारे कराल हो टूटे,
ये लहू हमारा बहा रहे है जैसे
वैसी ही धारा इनके सर से छूटे।"

गर्जना वीर की सुनकर सब हुंकारे,
सब ही ने अपने कोप-धनुष टंकारे,
फन-फना उठे क्रोधांध वीर-भट अगणित
आहत होकर थे काल-व्याल फुंकारे।

हिंसा ने था प्रति-हिंसा को भड़काया,
उन्मत्त भीड़ मे ज्वार क्रोध का आया,
चेतना ज्ञान की थी मर चुकी सभी की,
अवचेतन से उठकर दानव गुर्राया।

बदला लेने का भाव बना संक्रामक,
हिंसा का वह लघु रूप हो गया व्यापक,
जो भीड़ अभी अनुशासित थी संयत थी
वह एक लक्ष्य के लिये बनी आक्रामक।

था एक लक्ष्य बस बदला—केवल बदला,
बदला लेने को था सब का मन मचला,
जिसने हमको मारा, हम उसको मारे
बस यही कदम हो हम सबका अब अगला।

बस फिर क्या था, सब झपट पड़े ले पत्थर,
आकुल थे सब देने हिंसा का उत्तर,
जो पन्थ उन्हे वर्जित था नेता द्वारा
बढ़ गई भीड़ थी हिंसा के उस पथ पर।

आपे के बाहर हुए सभी दीवाने,
फिर प्रलय-मेघ से लगे धरा पर छाने,
थी बरस चुकी लाठियाँ सरो पर उनके
वे क्रोधवन्त हो लगे उपल बरसाने।

जब देखा, ये नरसिंह क्षुब्ध हो जागे,
दुम दबा लाल पगड़ी वाले सब भागे,
बढ रही भीड़ थी उनके पीछे-पीछे
वे प्राण बचा कर भाग रहे थे आगे।

जा छिपे पुलिस थाने मे सभी लपक कर,
अब घेर लिया जा उन्हे भीड़ ने सत्वर,
अब पटाक्षेप था उन सबके जीवन का
थी मौत लगी मँडराने उनके सर पर।

उस क्रुद्ध भीड ने झट से आग लगा दी,
यह चिता जीवितों की उसने धधका दी,
हँस रही मौत थी देख-देख कर ज्वाला
खुश होती थी लख जीवन की बरबादी।

जल उठी लाल पगडी वालों की होली,
प्रमुदित थी लख कर मतवालो की टोली,
उनके सर पर थी हुई मौत की वर्षा
जो बरसाया करते थे लाठी-गोली।

जल मरे, एक अफसर—इक्कीस सिपाही,
थी कितनी भीषण—कितनी करुण तबाही,
इतनों को खाकर भूख मिटी हिसा की
थी मिली मौत को जीवन-बलि मनचाही।

जन-नायक ने जब समाचार यह पाया,
उसके मन पर दुख का पर्वत अर्राया,
हिसा थी यह उसके जीवन-दर्शन की
गाधी के मन ने भारी धक्का खाया।

हिसा का यह खुलकर हुड़-दंग हुआ था,
क्या लाल-लाल आँखो का रंग हुआ था,
हो विवश, सोचता था वह मौन तपस्वी
यह त्याग-तपस्या का व्रत-भंग हुआ था।

आदेश मिला—"यह बन्द करो सत्याग्रह,
यह सत्याग्रह हो गया आज हत्याग्रह,
सिद्धान्त जल उठे हिंसा की ज्वाला में
यह पतन होगया मेरे मन को दुस्सह।

मन मे हिसा के भाव न पलने दूँगा,
इस पथ पर कोई चले, न चलने दूँगा,
जो उगा अहिसा-सत्य-प्रेम का सूरज
जीवन रहते मैं उसे न ढलने दूँगा।

जो जीवन की बलि ले, बलिदान नही है,
सत्पथ की, लोगो को पहचान नही है,
आत्मोत्सर्ग बलिदानो की परिभाषा
क्यों सत्य-व्रती को इसका ज्ञान नही है?

क्यों हुई अहिंसा है हिंसा में शोणित ?
क्यों हुई भावना असुर-वृत्ति में पोषित ?
करना होगा हमको इसका प्रायश्चित्त
मैं यह आन्दोलन बन्द कर रहा घोषित ।

इतिहास के आँसू

चल रहा यान जब हो पूरी द्रुत-गति से,
हो चक्र प्रवर्तित प्रबल वेग की अति से,
चर-मरा उठेंगे उसके सब कल-पुर्जे
यदि उसे रोक दे हम सहसा दृढ यति से।

जो बैठे उसमे, सब झटके खायेंगे,
सब एक-दूसरे से ही टकरायेंगे,
जो सम्हलेंगे, मुश्किल से ही सम्हलेंगे
जो सम्हल न पाये, बडी चोट खायेंगे।

ऐसा ही सहसा हुआ स्तब्ध आन्दोलन,
जब प्राप्त कर रहा था वह अपना यौवन,
यौवन की गति को मोडा तो जा सकता
है किन्तु दमन मे विकृति का आवाहन।

आन्दोलन का अवरोध सभी को खटका,
लोगो के मन को लगा तीव्र यह झटका,
यह लगा, चढा कर आसमान पर जैसे
धक्का देकर ही गया भूमि पर पटका।

हो गये सभी के अंजर-पंजर ढीले,
भुन-भुना उठे मन ही मन सभी हठीले,
जन-आन्दोलन का स्थगन देख यह सहसा
सब के सब होते लाल और थे पीले।

यद्यपि जन-नायक जनता मे अति प्रिय थे,
उनके प्रति श्रद्धा-भाव सभी सक्रिय थे,
आदेश-वचन इस समय लगे कटु उनके
जो लगते पहले सबको मधुर अमिय थे।

प्रतिक्रिया विकट सी जन-जीवन मे व्यापी,
असफलता सबने आदेशों से नापी,
यह कौन कहे, थी भूल हुई सेना से
या क्रियाशील जनता ही थी अपराधी।

उत्साह-भावना हुई सभी की खंडित,
अपराध एक का, राष्ट्र हुआ था दंडित,
चर्चा सुन पड़ती, भूल हिमालय जैसी
कर बैठा है यह राजनीति का पंडित।

जन-आन्दोलन भी तो रूप एक है रण का,
रण मे होता है मूल्य बहुत हर क्षण का,
क्षण भर भी रण मे दृष्टि कहीं यदि चूकी
जाता है सपना टूट, विजय के प्रण का।

रण-राजनीति मे होती क्षम्य कुटिलता,
है चक्र-व्यूह-सी इसमे विकट जटिलता,
होते हैं कितने दाव-पेच आवश्यक
तब कठिनाई से मिलती कहीं सफलता।

है भूल सदा ही भारत करता आया,
है सदा जीत ने उसकी पलटा खाया,
मुंह के बल ओंधा गिरा सदा वह रण मे
थोथे आदर्शों को जिसने अपनाया।

आदर्श नही पाले जाते बन्धन में,
है कभी कुटिलता भी आवश्यक मन मे,
जीवन दाता घन मे चपला रहती है
है लपट छिपी रहती सुरभित चन्दन में,

है इतिहासो के पृष्ठ बोलते दिखते,
अगणित रहस्य वे हमे खोलते दिखते,
आदर्श-वादिता के कारण योद्धा भी
औंधे मुँह गिर कर व्रण टटोलते दिखते।

रण मे यद्यपि आवश्यक होता बल है।
पर आवश्यक भी कभी शत्रु से छल है,
जो छल-बल से कर सके युद्ध संचालन
रण-नीति विशारद समझो वही सफल है।

इतिहास साक्षी इसको हमको देता,
जय और पराजय का निर्णायक नेता,
यदि चूक गया वह, लिखी पराजय निश्चित
यदि सम्हल गया तो विजय वरण कर लेता।

है महँगी हमको पडी भूल दुखदाई,
ऐसे ही हमने पराधीनता पाई,
इतिहास कह रहा चीख-चीख कर, हमने
सन सतावन्न मे यही भूल दुहराई।

यदि स्वामि-भक्ति का ढोंग न भारत करता,
स्वातन्त्र्य-समर मे बिना मौत क्यो मरता?
इतिहास और ही कुछ होता अपना, यदि
रण मे दिखलाता पूर्ण राष्ट्र तत्परता।

ले आदर्शों की आड़ छिपे कुछ कायर
भारत ने पाये थे डायर[1] ओडायर[2],
दिल्ली कलकत्ता और वम्बई नत थे
हावी थे उन पर लन्दन-लंकाशायर[3]।

वन गया भूल का कारण चौरी-चौरा,
ऐसी अगणित भूलो का मिलता व्यौरा,
रण के थोथे आदर्शो के पालन मे
गौरी के हाथों मारा गया पिथौरा।

जो भी वोला, यह वोला—भूल हुई है,
यह सत्याग्रह है, कव यह छुई-मुई है,
इसके प्रवाह मे जो पड़ता, वहता है
जो उडे फूक से, यह नही रुई है।

यदि लोगो का उत्साह नही चुक जाता,
यदि आन्दोलन का वेग नही रुक जाता,
तो अँग्रेजी साम्राज्यवाद का झण्डा
यह किसे ज्ञात शायद तव ही झुक जाता।

---

१. डायर=जनरल डायर जो जलयान-वाला वाग के हत्या-काण्ड का मुख्य अधिकारी था।

२. ओडायर=पजाव का तत्कालीन गवर्नर जिसने जलयान-वाला वाग मे गोली चलाने का आदेश दिया था।

३. लदन लकाशायर=इग्लैण्ड के दो प्रसिद्ध नगर।

पर भूल हो गई वह, हमको रोना था,
इतिहास और ही कुछ अपना होना था,
अभिशापो से उर्वरा-भूमि पर अपनी
दुख-दर्द करुण हमको अपना बोना था।

अंकित है अपने आँसू इतिहासो पर,
हम गर्व करे क्यो उनके अभ्यासो पर,
जड़ता की जड हमको उखाड़नी होगी
जो जमी हुई है भारत की सांसो पर।

अंगारों का उद्घोष

ज्वाला न उठी थी केवल सागर-तट से,
जागा था सारा देश अनल-आहट से,
गगा यमुना का पानी खौल उठा था
अब झडते थे अंगारे वशीवट से।

जो हुआ अकुरित रोष अशेष हृदय मे,
वह प्रतिभासित होता था नील-निलय मे,
थी उसी रोष की, फूलो मे अरुणाभा
वह लक्षित होता था कोमल किसलय मे।

उस ज्वाला से हर अतर झुलस रहा था।
उससे भारत का घर-घर झुलस रहा था,
उतप्त कण्ठ हो रहे उसी के तप से
कोमल-कण्ठो का मृदु-स्वर झुलस रहा था,

इस ज्वाला पर यह डाल दिया क्यो पानी ?
जब लपटो में गति आई थी तूफानी,
अब तो इसकी लौ और भभक उट्ठी है
है झुलस रही इससे घर की ही छानी।

हत-बुद्धि हो गये स्वय-सेवको के दल,
उर से उद्वेलित असतोप की हल-चल,
प्रतिक्रिया बहु-मुखी देती थी दिखलाई
भावो की गति हो गई और भी चचल।

हो गये भग्न सब आजादी के सपने,
ढहे गये महल सब मसूबों के अपने,
जो ज्वालाओ में हँस कर कूद पड़े थे
वे लगे आत्म-ज्वाला से सभी तड़पने।

कुछ वे थे जिनकी बुझी नही थी ज्वाला,
पथ नया उन्होंने अपने लिये निकाला,
"हम क्रान्ति शस्त्र के बल पर करके भीषण
पा ही लेगें आजादी की जयमाला।

यद्यपि इस शासन का पंजा भारी है,
आतंकित इससे दुनिया ही सारी है,
पर जिसके उर में भट्टी धधक रही हो
क्या डरपा सकती उसको चिनगारी है?

हम जूझेंगे इस महा-शक्ति से डट कर,
अपनाकर भीषण क्रान्ति, शान्ति से हटकर,
अपने पागल प्राणों का जोर लगा कर
दिखला देगें यह सत्ता शीघ्र पलट कर।

हम युद्ध गुरिल्ला कर छापे मारेंगे,
हम असफलता से हृदय नही हारेंगे,
अपनी धरती का पाप उतारेंगे हम
गोली से हम पापी को भी तारेंगे।

हम बलि-पंथी बन कर बलिदान करेंगे,
धरती की मिट्टी का सम्मान करेंगे,
हम प्रबल रक्त का परिचय जग को देने
उत्सर्गों के पथ पर प्रस्थान करेंगे।

पीड़ा असह्य हो उठी हमें बन्धन की,
है बीत चुकी अब घडी करुण-क्रन्दन की,
हो सावधान अत्याचारी ! अब तुझको
ये उठी जलाने है लपटें चन्दन की।

शोणित में तूफानी उबाल आया है,
भूकप भावना का कराल आया है,
तेरे विनाश की बेला आ पहुँची है
सर पर मँडराता हुआ काल आया है।

हम महानाश की लपटों पर नाचेंगे,
हम मे कितनी है आग, इसे जाँचेंगे,
पढ़ चुके शान्ति के ग्रन्थ सामने तेरे
हो विवश आज खूनी भाषा बाँचेंगे।

डोले ! डोले ! यह धरणी डग-मग डोले,
बरसे ! बरसें ! इस आसमान से शोले,
क्षय हो! क्षय हो ! साम्राज्यवाद का क्षय हो !
सारी दुनिया अब भारत की जय बोले !"

●

कथा-क्रम

कुछ दिन राजनीतिक कार्यों मे निकालने के पश्चात भगतसिंह ने विद्याभ्यास के लिए नेशनल कालिज लाहौर की बी० ए० कक्षा मे प्रवेश प्राप्त कर लिया। कॉलेज के स्नेह सम्मेलन के अवसर पर तात्कालिक-भाषण-प्रतियोगिता का कार्य-क्रम रखा गया।

भगवतीचरण : युवक-कर्तव्य

"यौवन क्या है, यह लपटो का सगम है
सरगम है यह अन्तर के तूफानो का,
यौवन अरमानो का सर्वोच्च शिखर है
है पुण्य-पर्व यह यौवन बलिदानो का।

अगारो का पथ ही यौवन का पथ है
हर बात असम्भव यौवन की मजिल है,
काँटे यौवन के लिये फूल बनते है
हर मुश्किल को यौवन खुद ही मुश्किल है।

आँधियाँ प्रबल-तम यौवन की साँसे है
भू-कम्प धडकने है यौवन के दिल की,
घन-गर्जन अल्हड यौवन के ही स्वर है
है तड़ित दीप-माला इसकी महफिल की।

यह आसमान है चौडा वक्ष समय का
जो तना हुआ दिखता है हमे विजन मे,
ये नही सितारे, तमगे टँके हुए है
जीते है जो इसने अपने यौवन मे।

है मेरु-दण्ड यौवन मानव-जीवन का
युग के सपनों का है यह रग सुनहला,
यौवन ने अपने संकल्पो के वल से
है रूप धरा का जब मनचाहा बदला।

हम जिन्हे युवक कहते अपनी भाषा मे
वे है यौवन के अग्नि-दूत मतवाले,
हम उन्हे दहकते शोले भी कह सकते
कह सकते उनको लपटो के रखवाले।

है युवक, जिन्हे सागर उथले लगते है
बौने लगते जिनको अजेय पर्वत है,
जो अन्तरिक्ष का मान रौद देते है
ये चाँद-सितारे जिनके आगे नत है।

क्या बात करे यौवन के दीवानो की
ज्वाला-मुखियो पर रास रचाते है वे,
देना पडता तो मस्तक दे देते है
मस्तक देकर सम्मान बचाते है वे।

जब है यौवन के हाथ सर्जना करते
ये नई सृष्टि धरती पर रच देते है,
जब तक सपनो मे प्राण नही भर देते
ये हाथ चैन तब तक न तनिक लेते है।

जब ऐसा यौवन पाया है हमने, तो
हम चुने आग के फूल, मौत से खेले,
यदि आसमान फट पडे हमारे सर पर
हम अपने भुजदण्डो पर उसको झेले।

यौवन की साँसों को धौकनी बनाकर
हम कर्तव्यो की भट्टी को दहकाये,
अपने सपनो को हम साँचो मे ढाले
दृढ सकल्पो से रगड उन्हे चमकाये।"

यशपाल : सामाजिक क्रांति

"क्या है समाज, पहले हम यही विचारे
इसके रचना-तत्वो का विश्लेषण हो,
फिर क्रान्ति और उसके प्रभाव का व्यापक
सापेक्ष्य भाव से सम्यक् अभिप्रेषण हो।

होता समाज केवल समुदाय नही है
यह नही व्यक्तियो का केवल अनुदल है,
सह-जीवन की चेतना प्रखर है इसमे
यह बुद्धि और भावना-युक्त जन-बल है।

यह है विराट अस्तित्व व्यक्ति सत्ता का
यह रूप आत्म-चेतनता का व्यापक है,
यह संश्लिष्ट सत्ता ज्वलन्त जीवन की
यह व्यष्टि-भावनाओ का उत्थापक है।

यह महासिंधु जन-मानस की लहरो का
हर लहर इसे कुछ अपनापन देती है,
यह मनोवृत्तियो का है रूप परिष्कृत
हर मनोवृत्ति इसको जीवन देती है।

यह शुद्ध सगठन है परार्थ भावो का
कल्याण-कोष यह सर्वमान्य है अपना,
है यह निदान-उपचार पाशविकता का
यह मानवता का सबसे सुन्दर सपना।

विश्वास, धर्म, सस्कृतियाँ, परम्पराएं
पाता समाज है दृष्टि-दान इन सब से,
वह नया पथ पाता है कर्तव्यों को
पाता जीवन को दिव्य-ज्ञान इन सबसे।

पर कभी-कभी विश्वास-धर्म की जड मे
अहमन्य भाव के कीड़े लग जाते है,
पीते रहते है वे जीवन-रस इसका
इसके विकास की गति को वे खाते है।

इसकी आकृति में सहज विकृति आ जाती
है इस समाज की गति कुण्ठित हो जाती,
जो शक्ति शिखर का पथ-दर्शन करती है
वह शक्ति स्वय ही भू-लुण्ठित हो जाती।

विकृति का चिर-उपचार क्रान्ति है केवल
है क्रान्ति तिक्त औषधि समाज के ज्वर की,
यह शल्य-चिकित्सा है समाज के व्रण की
है क्रान्ति स्वस्थ सद्गति समाज जर्जर की।

यह वह उवाल है जो समाज के दूषित
अहमन्य मनोभावो का कर उत्सारण,
प्रस्थापित कर समरसता और व्यवस्था
वनता जीवन के लिये शान्ति का कारण।

है क्रान्ति दहकती भट्टी, जिसकी ज्वाला
है जंग-मोरचा इस समाज का खाती,
कर भस्मसात् इसके विकार क्षण भर मे
इस्पात बना कर फिर इसको चमकाती।

है क्रान्ति एक दावाग्नि प्रखरतम जिसमे
झंखाड़-झाड कुविचारो के जल जाते,
वह भस्म खाद बनती नूतन बिरवो को
जो पनप-पनप नव-जीवन पा लहराते।

वस्तुत क्रान्ति चिन्ता का विषय नही है
है क्रान्ति न हौआ, जिसे देख डर जाये;
जब भी समाज मे इसका प्रादुर्भव हो
हम अपनी साँसो से इसको दहकाये।

आह्वान करे हम स्वत. क्रान्ति का अनुदिन
हम इसकी ज्वालाओ को आहुतियाँ दे,
है कलुष-खोट जितने, सब जला-गला कर
हम इस समाज के लिए नई कृतियाँ दे।"

भगतसिंह : बलिदान

बलिदान—शब्द यह चार वर्ण का पावन
चारो वेदो का मूल-मन्त्र सुन्दर है,
श्रुति, शास्त्र उपनिषद है इससे आलोकित
सागर अथाह इस गागर के अन्दर है।

बलिदान, विलोड़ित होता जब अंतर मे
बलिदान हमारी जिह्वा पर जब आता,
बलिदान हुए जितने अब तक इस भू पर
यह उन सब की है हमको याद दिलाता।

बलिदान, शब्द इतिहास स्वयं विस्तृत है
जिसमे संचित इसकी गौरव-गाथाएं,
बलि हुए किस तरह देश-धर्म पर अपने
बालक, जवान बूढे, बहनें-माताएं।

वलिदान हमारे अति-बल का द्योतक है
हम करते जिसका दान आन पर हँस कर,
वलिदान हमारे जीवन का परिचय है
देते जिसको, पाकर देने का अवसर।

वलिदान—रक्त का है प्रवाह यह अपना
सचार धमनियों मे जिसका अविरल है,
वलिदान—एक कल्पना पुण्य-पावन है
वलिदान—मोक्ष का साधन एक प्रवल है।

वलिदान एक ऐसी मशाल है जिसको
हाथो में ले, हम वक्ष चीरते तम का,
इस महादेश की गौरव-ग्रन्थावलि का
वलिदान—पृष्ठ है खुला हुआ, अनुक्रम का।

वलिदान एक उज्ज्वल दर्पण है जिसमे
है भूत, भविष्यत् वर्तमान सव दिखते,
वलिदान, एक सुन्दर लिपि है हम जिसमे
इस विशद राष्ट्र की कीर्ति-कहानी लिखते।

वलिदान—दान की है ज्वलत परिभाषा
वलिदाने—हमारे मानस का चिन्तन है,
वलिदान—प्रेरणा है हमको सद्गति की
यह जीवन का सर्वोपरि अभिनन्दन है।

सिद्धान्त, भावना, नीति, धर्म रक्षण को
वैसे सदैव हम वलि देते आये है,
पर वीर-प्रसवनी इस भारत की भू पर
मर मिटने के ही भाव अधिक भाये है।

जब-जब इस धरती पर संकट-घन छाए
हम उठे प्रभंजन बन कर उन्हे उडाने,
माँ की पुकार सुन उठ-उठ कर दौडे है,
हम जीवन की बलि देकर उसे छुडाने।

इतिहास कह रहा चीख-चीख कर, हम है
जो आन-बान हित बन जाते परवाने,
हम लिये हथेली पर प्राणो को फिरते
इस धरती की आजादी के दीवाने।

बलिदान किये जितने, क्या उन्हे गिनाये
गिनना हो जिसको, गिन ले नभ के तारे,
न्यौछावर जितने लाल हुए धरती पर
वे चमक रहे है नभ मे रत्न हमारे।

बलिदान-कसौटी आज पुन प्रस्तुत है
हम को अपना पौरुष इस पर कसना है,
शोणित से लपटो का उर शीतल करना
अब नही किसी स्नेहिल उर मे बसना है।

आजादी पर जब है सकट-घन छाए
बलिदानो का फिर हमे पथ चुनना है,
अपमानो से जब प्राण-प्राण जलते हो
तो हमको मेघ-मल्हार नही सुनना है।

प्रज्ज्वलन शान्त तब होगा दग्ध हृदय का
जब रक्त-सिंधु मे हम डूबे-उतराये,
हम अपना, अपने अरि का रक्त बहा कर।
अपमानो की ज्वाला को शीघ्र बुझाये।

जिसने सम्मान छुआ है इस धरती का
उसके हाहाकारो के स्वर सुनना है,
जो आज सभ्य कहला कर भी नंगा है
परिधान कफन का उसके हित वुनना है।

भारत माँ के लाढले-सपूतों से है
इस दीवाने को वात यही फिर कहना,
यातना नर्क की सहना श्रेयस्कर है
पर श्रेयस्कर है नही दासता सहना।

जो कालिख है लग गई कीर्ति पर अपनी
हम सव शोणित से उस कालिख को धोएँ,
आजादी की उन्मुक्त फसल लहराने
हम वीज मस्तको के धरती मे वोएँ।

यदि है अभीष्ट हम को इस पावन भू पर
पुण्यो की फसले फले और वे फूले,
तैयार रहे हम अपनी वलि देने को
फाँसी के फन्दो पर भी हँस कर भूले।"

तूफान और यौवन

चाँद दूज का तुमने बढकर नभ मे चढते देखा होगा,
यौवन की मंजिल पर उसको आगे वढते देखा होगा।
तुमने महासिंधु मे भीषण ज्वार उफनने देखा होगा,
तुमने सागर की लहरो को पर्वत बनते देखा होगा।

वन-प्रान्तर मे दावानल का तुमने नर्तन देखा होगा,
तुमने विकट ज्वाल-माला का क्रुद्ध प्रवर्तन देखा होगा।
तुमने मतवाले मेघो का यौवन-गर्जन देखा होगा,
तुमने उनका तडित छटा मिस वन्हि-विसर्जन देखा होगा।

तुसने धरती के आँगन मे अधड़ आते देखा होगा,
रौद्र-रूप धर तुमने उसको धूम मचाते देखा होगा।
भगतसिह बन गया बगूला ऐसे ही प्रचण्ड यौवन का,
उसके सकल्पो मे जाग्रत बल था अब उनचास पवन का।

वह यौवन दे उठा चुनौती, सागर के भी तूफानो को,
वह यौवन दे उठा चुनौती, झंझा के दृढ अरमानो को।
उस यौवन के आगे पर्वत झुकने को तैयार हो गए,
उस यौवन के सहज भाव भी उद्दीपित अगार हो गए।

उस यौवन की ज्वाला लख कर सहमी दावानल की ज्वाला,
उस यौवन पर हुई समर्पित प्रखर तेजयुत विद्युत-माला।
उस यौवन की प्रबल गर्जना सुनकर घन-गर्जन हत-प्रभ था,
उस यौवन की ऊँचाई के आगे नीचा लगता नभ था।

उस मतवाले का यौवन अब पौरुष के पथ पर चलता था,
जो उसने प्रण ठान रखा था, वह प्रतिपल उर मे जलता था।
उसका प्रण था, अपनी धरती पर अपना झण्डा फहराना,
उसका प्रण था जन-जीवन मे हर्ष-तरंगो का लहराना।

एक दिशा को ही उत्प्रेरित उसके संकल्पों की गति थी,
क्रान्ति-भावना की धारा मे डूब रही उद्दंड प्रकृति थी।
फिर कैसे उसका मन हरता गहन अध्ययन विद्यालय का,
बाहर आने को आतुर था, जब भीषण तूफान हृदय का।

विद्यालय से गायब रहना अब उसके जीवन का क्रम था।
गोपनीय संगठन क्रान्ति का, यह उसका हो गया नियम था।
इन कामो मे भगतसिह का था सुखदेव बना सहयोगी,
गुप्त-क्रान्ति-कारी-दल का वह सिद्ध हो रहा सिद्ध नियोगी।

वट-धर्मी समाज

यह वट-वृक्ष विशाल, विजन मे बाहु-जाल फैलाये,
जटा-जूट-धारी मुनि-सा यह दिखता ध्यान लगाये।
इसकी छाया मे बैठे, दो युवक वार्ता-रत है,
गुप्त-मंत्रणा हेतु नगर से दूर यहाँ आगत है।

है चर्चा का विपय, "चाहिए हम को युवक निराले,
वलिदानी, साहसी, आन पर जो मर-मिटने वाले।
जो हो विश्वसनीय परम, दृढ अनुशासन के पालक,
विषम परिस्थिति मे भी हो जो अडिग कार्य-सचालक।

अगर देश की धरती माँगे, रक्त उँडेल सके जो,
जो काँटो पर चले, आग की वर्पा झेल सके जो।
अपने गुप्त सगठन को है, ऐसे युवक अपेक्षित,
देश-भक्ति की प्रवल भावनाओ से हो जो प्रेरित।"

उत्तर-प्रति-उत्तर द्वारा था विपय अभी यह चर्चित,
हुई वार्ताक्रम मे भारी बाधा एक उपस्थित।
चिडियो ने कुहराम मचाया चे-चे-चे-चे करके,
गला फाड कर चीख रही थी वे सब मारे डर के।

नीड ओर ही सरक रहा था, एक भयकर विपधर,
व्यक्त कर रही थी बच्चो की चिन्ता वे चिल्ला कर।
भगतसिह को पल भर मे ही वात समझ मे आई,
बोला—"है सुखदेव! परीक्षा पर अपनी तरुणाई।

अपने रहते, यह चिडियो के वच्चो को खा जाये,
यौवन होगा व्यर्थ, न इनकी रक्षा यदि कर पाये।
है पिस्तौल नही, चढ कर मैं इसे गिराता भू पर,
तव तक तुम तैयार रहो, ले भारी-भारी पत्थर।"

रोक सके सुखदेव, पूर्व ही इसके वह जा लपका,
झटका दिया पूँछ मे तगडा, विपधर भू पर टपका।
तत्पर था सुखदेव, दिये उसने कस-कस कर पत्थर,
ढेर हो गया विपधर अव पीड़ा से तड़प-तड़प कर।

प्रथम परीक्षा मे दोनो ही वहुत खरे उतरे थे,
काल-व्याल से जूझ, काम साहस का कर गुजरे थे।
मृत भुजंग निकटस्थ वही पर अव भी पड़ा हुआ था,
भगतसिह भावो मे डूवा-डूवा खड़ा हुआ था।

"क्यो भाई क्या सोच रहे, क्या वात विचार रहे हो ?
भावो मे डूवे-डूवे, क्या चित्र उतार रहे हो ?
तुम कर्मठ हो कठिन, किन्तु वहुधा भावुक हो जाते,
भाव समाधि लगाकर तुम हो मन ही मन खो जाते।"

कहा भगत ने चौक—"मित्र मै हूँ विचित्र उलझन मे,
यह विशाल वट-वृक्ष देख, यह वात उठी है मन मे।
केवल होना वडा, वडप्पन का पर्याय नही है,
अपना-अपना स्वार्थ, वडो का क्या व्यवसाय नही है ?

है विशाल यह वृक्ष, भुजाएँ है अपनी फैलाये,
किन्तु कोटरो मे रहता यह भीषण जन्तु छिपाये।
जितनी इसकी परिधि, जहाँ तक रहती इसकी छाया,
अपना दृढ एकाधिपत्य ही इसने सदा जमाया।

बडे वृक्ष के नीचे छोटे पौधे पनप न पाते,
वे अपने समुचित विकास को तरस-तरस रह जाते।
जो विशाल तरु, छोटे पौधो का जीवन-रस पीते,
ये रहते मृतप्राय, किन्तु वे बडे-बडे तरु जीते।

ऐसी ही विचित्र कुछ अपने इस समाज की गति है,
बडे पनपते, जो छोटे—उनके विकास पर यति है।
अधिकारो की जडे जमाये वे बैठे रहते है,
शोषण की पीडा तो उनके आश्रित ही सहते है।

कुविचारो के विषधर पलते, कथित बडो के मन मे,
जाने कितने पाप पला करते उनके जीवन मे।
जो जितने है बडे, बडे वे उतने पाप कमाते,
खाते अन्न गरीब, गरीबो को ये खुद खा जाते।

सब छोटे इस कथित बडप्पन के शिकार होते है,
कहना भी अभिशाप, आँसुओ से पीडा धोते है।
भूख बडो की बडी, सदा रहते है वे मुंह बाए,
बडे-बडो ने अब तक जाने कितने छोटे खाए।

राजनीति, साहित्य, धर्म मे मठाधीशता चलती,
नये अकुरो की गति उनको काँटे जैसी खलती।
गहरी जडे जमाकर रहते दूर-दूर तक छाये,
क्या मजाल है कोई छोटा आगे बढने पाये।

उन्हे न छेडो, वे समाज के खम्भे बडे-बडे है,
कन्धो पर ले बोझ राष्ट्र का कैसे तने खडे है।
जिन्दाबाद बडप्पन उनका, देश भाड मे जाये,
ठेकेदारी रहे सुरक्षित उस पर आँच न आये।

तथा-कथित जो वडे, न औरो को वे जीने देगे,
जो रस वे पीते, औरो को तनिक न पीने देगे।
पुचकारेगे और शिकजे मे वे फिर कस लेगे,
फुफकारेगे विपधर जैसे, दाव लगा डस लेगे।

प्रगति देश की, ये दिग्गज है बैठे हुए दबाये,
है माई का लाल कौन, जो आकर इन्हे हटाये।
ये वट-धर्मी, जव तक धक्के खाकर नही गिरेगे,
निश्चित है, इस धरती के दिन, तव तक नही फिरेगे।'

"ठीक कह रहे भगतसिह तुम, मै बिलकुल सहमत हूँ,
उनके इस अहमन्य खोखलेपन से भी अवगत हूँ।
कभी-कभी जब तुम भावो की धारा मे वहते हो,
बड़े पते की बात मित्रवर! तब-तब तुम कहते हो।

वडी दूर की कौडी लाते तुम भावो मे बह कर,
पर क्या होगा, व्यर्थ आत्म-पीड़ा यह अपनी सह कर।
जो वाहर का शत्रु, निबटना पहले उससे हमको,
कर ही देगे हम विदीर्ण फिर अपने घर के तम को।

आधी छोड अगर पूरी को लेने हम धायेगे,
वह जायेगी छूट, हाथ मलते हम रह जायेगे।
पहले देश मुक्त कर ले हम, फिर इनसे निबटेगे,
जब तक लक्ष्य न होगा पूरा, पथ से नही हटेगे।"

"यद्यपि अधिक व्यावहारिक है प्रियवर! ज्ञान तुम्हारा,
किन्तु पलटनी ही होगी, हमको समाज की धारा।
ो जिस योग्य, उसे उतना सम्मान दिलाना होगा,
भूख गरीबी मिटा, भाग्य सबका चमकाना होगा।

न्याय कहाँ का ? श्रम के साधक अपना स्वेद बहाये,
उनके जीवन के पुण्यो का लाभ दूसरे पाये।
सासो के इस क्रय-विक्रय के क्षम्य नही व्यापारी,
कर्म-निष्ठ श्रम के साधक हो पूँजी के अधिकारी।

यह समता अपने समाज मे हमको लानी होगी,
नये विचारो की जन-गङ्गा हमे वहानी होगी।
ठीक कहा तुमने, पहले है हमे मुक्ति आवश्यक,
फिर समाज मे क्रान्ति-भावना जाग्रत करना व्यापक।

अत मुक्ति के लिये, राष्ट्र हमें अपना आज जगाये,
कर्म स्वय करके, लोगो को हम कर्तव्य सिखाये।
जैसे भी बन सके, चेतना है समाज मे भरना,
हम मिट जाये—क्या चिन्ता है ? मुक्त देश को करना।"

कथा-क्रम

भगतसिंह तथा उसके साथी नाटक खेलकर उनके द्वारा लोगों को राष्ट्रीय चेतना देते रहते थे।

इन्कलाब

[मंच पर दो युवक बातें करते दिखाई देते हैं। एक का नाम है विक्रम और दूसरे का विनोद। मंच पर प्राकृतिक वातावरण चित्रित है।]

विनोद— प्रियवर! देखो यह प्रकृति आज सज-धज कर
कैसी दुलहिन-सी दिखलाई देती है,
कुंकुमी भोर की यह अरुणाभा देखो
लज्जा ही जैसे अँगडाई लेती है।
आगम वसन्त का—यौवन का आगम है
सुमनो के मिस यह यौवन ही मुकुलित है,
वातास नहीं, माधुर्य द्रवित है मनका
किसलय-दल क्यों? यह रोम-रोम पुलकित है।

विक्रम— इस प्रकृति-वधू के मिस तुमने तो प्रियवर!
चित्रित की है अपने ही मन की झाँकी,
माधुर्य तुम्हारे मन का प्रकट हुआ है
हर चितवन ही दिखती है तुमको बाँकी।
जिसको तुम लज्जा की अरुणाभा कहते
मुझको शोषित की वह फुहार सी लगती,
ये किसलय अगारे-से दहक रहे हैं
वातास-सुरभि मुझको बुखार-सी लगती।

विनोद— जीवन भी तुमको पतझड-सा लगता है
मर गई रसिकता जाने कहाँ तुम्हारी,
इस तरुणाई मे यह विरक्ति है कैसी ?
क्यो तुम्हे आग-सी लगती है फुलवारी ?

विक्रम— क्या नही जानते, अपनी स्वतंत्रता पर
है ग्रहण लगा, बन्दिनी आज माता है,
इसलिए आज जीवन सचमुच पतझड है
अब तो वसन्त भी लपटे फैलाता है।
माता रोए, हम कैसे खुशी मनाये ?
क्यो नही हृदय मे आग धधक उठती है ?
सम्मान आज आहत होकर भी चुप है
अरि पर क्यो विद्युत नही कडक उठती है ?

[किसी के कराहने का स्वर सुनाई देता है। दोनों ध्यान से सुनते है।]

विनोद— जाने प्रियवर ! यह कौन कराह रहा है
यह किसका करुणा-विगलित कातर स्वर है,
विक्रम— उस ओर वहाँ देखो, कोई आता है
वह थाम-थाम लेता दुख मे अन्तर है।

[कराहने वाला निकट आता है आकृति खुले हुए ग्रन्थ जैसी है। पृष्ठ फटे-फटे से है। कही-कही धब्बे भी लगे है।]

विक्रम— तुम कौन विजय मे भ्रमित ? तुम्हे क्या दुख है ?
किस पीडा से तुम आज कराह रहे हो ?
विनोद— क्यो याचक-सी लगती है दृष्टि तुम्हारी ?
वह वस्तु कौन सी जो तुम चाह रहे हो ?

आहत— देखो ! देखो ! तुम मुझको पहचानो तो
मैं हूँ भारत का ही इतिहास तुम्हारा,
देखो मुझको, मै कितना मर्माहत हूँ
फिर रहा आज मै हूँ यो मारा-मारा।

विक्रम— अच्छा ! अच्छा ! तुम हो इतिहास हमारे
विनोद— यह तन क्यो क्षत-विक्षत है, यह बतलाओ !
विक्रम— वह दुष्ट कौन जिसने तुमको मारा है
विनोद— अपनी पीडा की हमको कथा सुनाओ।

इतिहास— क्या नही जानते, दस्यु यहाँ घुस आये
भाई-चारे का हमे भुलावा देकर,
उनने हमको याचक-सा बना दिया है
सपत्ति और सुख-शान्ति सभी कुछ लेकर।
मुझ पर क्या बीती, कैसे तुम्हे बताऊँ।
उल्टा सीधा जाने क्या-क्या लिख मारा
लिख दिया कि भारत मे असभ्य रहते है
इसलिये उन्हे शासन वरदान हमारा।
जाने कितनी-कितनी ऐसी ही बाते
लिखवादी उनने झूठी और अनर्गल,
वे सभी घाव है अब मेरे इस तन पर
मेरे अशान्त मन मे है भारी हलचल।

विनोद— यह वहुत वडा जो घाव दिख रहा तन पर
यह कैसे कव है लगा, हमे समझाओ,
विक्रम— उपचार करे हम कैसे इस पीडा का
इसका निदान, हे पूज्य ! हमे वतलाओ।

इतिहास— यह बहुत बडा जो घाव दिख रहा तन पर
यह लगा अठारह-सौ-सत्तावन सन् मे,
जब मुक्ति-भावना परदेशी शासन से
जागी थी तुम जैसे वीरो के मन मे।
भारत के लाखो बेटे जूझ मरे थे
सग्राम मुक्ति के लिये हुआ था खुल कर,
जो आग हृदय मे थी अपने वीरो के
वह लावा बनती थी शोणित मे घुल कर।
दुर्भाग्य ! मुक्ति फिर भी न हमे मिल पाई
थी बदी, दासता की ही काली छाया,

विक्रम— अच्छा यह तो बतलाओ उन लोगो ने
इस मुक्ति-समर का विवरण क्या लिखवाया ?

इतिहास— जो कुछ लिखवाया, वही घाव तो उर मे
इसको केवल सैनिक-विद्रोह बताया,
यह लिखा, वीर अँग्रेजो ने साहस से
सैनिक-विप्लव को अच्छी तरह दबाया।
यह मेरे मुख पर उसने कालिख पोती
यह मेरे उर को दिया घाव घातक है,
सग्राम मुक्ति का छिडे भयकर अब फिर
केवल तब ही यह धुल सकता पातक है
विश्वास करूँ मै क्या भारत के बेटे
कुछ करके मेरे उर का घाव भरेगे ?

विक्रम और विनोद—हाँ ! हाँ ! हम है तुमको विश्वास दिलाते
जी-जान लगा कर हम यह कार्य करेगे।

[भारतीय इतिहास का कराहते हुए प्रस्थान। विक्रम और विनोद एक दूसरे को साभिप्राय देखते है]

विक्रम— देखा तुमने, यह है इतिहास हमारा
यह मनोव्यथा से कितना मर्माहत है,
जो समय गया, वह हाथ नहीं आ सकता
निर्माण हमें करना अपना आगत है।

विनोद— सहमत हूँ प्रियवर! इस विचार-धारा से
निश्चय ही अब कुछ करके हमें दिखाना,
इतिहास नया निर्माण करें हम अपना
इसके घावों पर मरहम हमें लगाना।

[फिर किसी के कराहने का स्वर सुनाई पड़ता है। कराहने वाला व्यक्ति सामने आता है। व्यक्ति के परिधान पर पर्वत, मैदान, वन और सागर के दृश्य चित्रित दिखाई देते हैं।]

विक्रम— हो कौन बन्धुवर! तुम, क्या पीड़ा तुमको?
इस विकल वेदना का बोलो क्या कारण?
विनोद— यह भी प्रियवर! निर्देशित हम को कर दो
हम करें तुम्हारा कैसे कष्ट-निवारण।

आगन्तुक—परिचय क्या दूँ, मैं बहुत दुखी हूँ भाई!
वैसे भारत का मैं भूगोल कहाता,
पर यहाँ विदेशी शासन मुझे कलंकित
अपमान अधिक अब मुझ से सहा न जाता।

विक्रम— किस तरह कलंकित करते तुम्हें विदेशी?
क्यों है इतनी तुमपर यह गहन उदासी?
भूगोल- वे कहते हैं—"आलसी निकम्मे होते
इनके स्वभाव से ही सब भारत-वासी।"

विनोद— यह झूठ सरासर है

विक्रम— असह्य भी हमको

विनोद— बोलो, वे इसका क्या कारण बतलाते ?

भूगोल— वे कहते—"भारत गर्म देश है, इससे
भारत-वासी कुछ काम नही कर पाते।

विक्रम— सभ्यता सिखाई है किसने दुनिया को ?

विनोद— दुनिया वाले जब नगे-भूखे रहते,

विक्रम— कितने कृतघ्न, ये कितने बडे प्रवचक

विनोद— ये हमे आलसी और निकम्मा कहते।

भूगोल— पीडा की इतनी ही तो परिधि नही है

विक्रम— किस तरह और वे तुमको पीडित करते ?

भूगोल— वे लोग कूप-मंडूक बताते हमको
वे कहते, हम है सिधु-तरण से डरते।

विक्रम— किस तरह सिद्ध करते यह दोषारोपण ?

विनोद— हम लोग कूप-मडूक रहे कब-कब है ?

भूगोल— कहते—भारत का तट कम कटा-फटा है
इसलिये नही अच्छे नाविक हम सब है।

विक्रम— सदियो पहले जलयान बनाये किसने ?

विनोद— व्यापार विदेशो मे किसने फैलाया ?

विक्रम— सभ्यता-चिन्ह मिलते किसके दुनिया मे ?

विनोद— सागर-मंथन कर किसने नाम कमाया ?

भूगोल— वे भूल गये ये बाते सब, पर अब तो
दोषारोपण कर मुझे कलकित करते,
सब पख नोच इस सोने की चिडिया के
वे सिधु-पार के अपने घर को भरते।

मेरी विकृति या अंग-भंग के हित वे
जाने कितनी योजना बनाया करते,
मैं बहुत दुखी हो गया, बचाओ मुझको
वे पीडा दे, मुझको तडपाया करते।

विक्रम और विनोद —यह पीडा नही तुम्हारी, हम सब की भी
हरना है यह पीडा, जी-जान लगा कर,
इन दस्यु-दलो को है खदेड़ना हम को
अब हम को दम लेना है इन्हे भगा कर।

[भूगोल का प्रस्थान। दोनो उसे जाते हुए देखते है। विक्रम दीर्घ निश्वास छोडता है।]

विक्रम— है पराधीनता ही जड सभी दुखों की
विनोद— अपने कुठार से हम यह जड काटेगे,
विक्रम— जिसने इस धरती का अपमान किया है
वे लोग धूल इस धरती की चाटेगे।

[इसी समय किसी नारी कठ का करुण-स्वर सुनाई देता है। धीरे-धीरे एक आकृति स्पष्ट होती है एक नारी कराहती हुई सामने आती। है विक्रम और विनोद उसके पास पहुँचते है।]

विक्रम— हो देवि! कौन तुम तुमको क्या पीड़ा है?
किस मनोव्यथा से यहाँ विजन मे फिरती?
विनोद— कृश-काय, क्षीण-आभा तुम व्याकुल दिखती
चलती हो तुम, तो चलती उठती-गिरती।
नारी— मै वही सस्कृति हूँ अपने भारत की
जिसकी घूट्टी पीकर तुम लोग पले हो,
तुमने मेरे आदर्शो को अपनाया
मेरे सकेतो पर तुम लोग चले हो।

विक्रम— निश्चय ही हम उपकृत है देवि तुम्हारे
विनोद— तुम पर विपत्ति आ गई कौन-सी भारी ?
विक्रम— है देवि तुम्हे पीडा पहुँचाई किसने ?
है कौन अधम वह पामर अत्याचारी ?

संस्कृति— ये परदेशी ही जडे काटते मेरी
ये तुले हुए है मेरे चिन्ह मिटाने,
अपनी सस्कृति ये मुझ पर थोप रहे है
दृढ-परिकर, मेरे घर से तुझे भगाने।
ये अपनी भाषा, धर्म, मान्यताएँ सब
है लाद रहे हम पर निज परम्परायें,
इस चकाचौध मे हम भी भूल रहे सब
फिर अपनी पीडा जाकर किसे सुनाये।

विक्रम— यह मान लिया, पर देवि ! आज तुम भी तो
हम लोगो के द्वारा पूजी जाती हो,
है अभी बहुत से कट्टर भक्त तुम्हारे
इस पीडा से क्यो इतनी घबराती हो ?

संस्कृति— तुम सोचो यदि गति यही रही, क्या होगा ?
मै धीरे-धीरे मिटती ही जाऊँगी,
यदि इसकी गति को रोक न पाया तुमने
तुम बतलाओ, मै कैसे बच पाऊँगी ?
सौहार्द्र-स्नेह लोगो मे कहाँ रहा अब
अपनाते थोथी सभी औपचारिकता,
अब लोग रीझते है नकली फूलो पर
अपना सोना देकर बटोरते सिकता।

मर-मिटने की भावना कहाँ धरती पर
उत्सर्गो की अब दिखती कहाँ ललक है,
है छिपी वचन की दृढता कहाॅ न जाने
आत्मीय-भाव की दिखती कहाॅ पुलक है ?
भाई, भाई का खून चूसने आकुल
माधुर्य कहाँ अब कौटुम्बिक जीवन मे ?
लज्जा तो जैसे उठ ही गई यहाॅ से
आ बसी नग्नता अब सब के तन-मन मे।
मैं इसी लिये कह रही, बचाओ मुझको
सुन कर पुकार भी लोग न मुझे बचाते,
परदेशी मुझ पर विकृति लाद रहे है
धीरे-धीरे वे मुझको खडा पचाते।

विक्रम — हे देवि ! न व्याकुल हो तुम, हम जीवित है
भारत से तुमको विदा न होने देगे,

विनोद — जो जडे तुम्हारी काट रहा, हम उसको
अपनी संस्कृति का बीज न बोने देगे।

विक्रम और विनोद —सकल्प हमारा दृढ है, जडे तुम्हारी
हम अपने पावन शोणित से सीचेगे,
हमने पुकार सुन ली है देवि ! तुम्हारी
हम विमुख न होगे, आॅख नही मीचेगे।

[धीरे-धीरे मच से सस्कृति ओझल होती है दोनो मित्र फिर विचार-मग्न हो जाते है ।]

विक्रम— प्रियवर ! देखो किस तरह हमारे सर पर
दुर्दिन के अगणित घन आकर मँडराये,
ये हम है, जो निश्चेष्ट मौन बैठे है
सब कुछ सहने को प्रस्तुत शीश झुकाये।

विनोद— यह है अपने यौवन को खुली चुनौती
हम उठे और उठ कर इसको स्वीकारे,
लद रहा भार जो अपनी इन साँसो पर
हम झटका देकर अब यह भार उतारे।

[इसी समय अधड के वेग का आभास होता है। वृक्ष झुक-झुक पडते है। पत्तियाँ हवा मे उडती है। सॉय! सॉय! की ध्वनि सुनाई देती है। किसी का गर्जना-घोष भी सुनाई पडता है।]

घोष— सकल्प तुम्हारा दृढ हो मुझे बुलाओ
आह्वान तुम्हारा सुन कर मै आऊँगा,
खा रहा सस्कृति है जो आज तुम्हारी
मै आया तो उसको ही खा जाऊँगा।

विक्रम— तुम मत्त प्रभजन जैसे कौन अगोचर?
आह्वान कर रहे हम, तुम सम्मुख आओ!

विनोद— तुम बनो हमारे मित्र और सहयोगी
आओ! आकर अपने कमाल दिखलाओ!

[झझा के वेग से कोई अत्यन्त पराक्रमी व्यक्ति लाल परिधान धारण किए हुए मच पर आ धमकता है।]

घोष— लो, आया मै, आगया, तजो सब चिन्ता
पर्वत भी हो, अब पथ से हट जायेगे,
सौभाग्य-सूर्य को ढँके हुए जो घन है
काई से वे क्षण भर मे फट जायेगे।
मै आया हूँ, अब उथल-पुथल होगी ही
जो रूठ गये है शुभ दिन, पुन फिरेगे,
उन्मादी के वे मादक स्वप्न-कँगूरे
अब टूट-टूट चरणो पर सभी गिरेगे।

विक्रम— तुम वीर-पुरुष हो कौन ? नाम बतलाओ !
विनोद— किस महाबली के सम्मुख हम, परिचय दो,
विक्रम— हम चले जूझने है अपने रिपु-दल से
विनोद— तुम बनो मित्र, समर मे हमे विजय दो।

घोष— पूछा है मेरा नाम, बताता हूँ, मैं,
सुन लो, मुझको सब इन्कलाब कहते है,
जब-जब होते है अत्याचार भयकर
तो लोग मुझे, उनका जवाब कहते है।

मै अहंकार खाता, अन्याय पचाता
जो शोषक, मै उनका शोणित पीता हूँ,
मै दमन-चक्र पर अपना चक्र चलाता
मै हाय ! हाय ! के स्वर सुनकर जीता हूँ।

रहता हूँ मै दलितो के कातर स्वर मे
जब अधिक दमन होता, मै फट पडता हूँ,
जो निर्दोषो का दलन किया करते है
मै उन लोगो की छाती पर चढता हूँ।

मै खुश होकर स्वाहा का सरगम सुनता
लपटो से शिखरो पर नाचा करता हूँ,
जो सर्वनाश लिक्खा होता दम्भी का
मै अट्टहास कर वह बाँचा करता हूँ।

जो अहकार से इठलाया करते है
मैं एक-एक कर वे मस्तक चुनता हूँ,
जो गला दबाया करते मजलूमो का
मै उन लोगो के लिये कफन बुनता हूँ।

मेरी लिपि के शोले अक्षर बनते है
बिजली चमका कर सतर खीचता हूँ मै,
हाहाकारो का जाप किया करता मैं
शोणित से अपने मन्त्र सीचता हूँ मै।

इतिहास बदल जाते मेरी हुकृति से
जुल्मो के सब अरमान निकल जाते है,
मेरी प्रचण्डता की परछाँई तक से
अन्यायो के हौसले पिघल जाते है।

सुन लिया, दे दिया मैने अपना परिचय
फिर सुन लो, मै हूँ इन्कलाब कहलाता,
दुर्भाग्य-निशा का हृदय चीर देता मै
मै हूँ दुर्दिन मे आफताव कहलाता।

पीडित भारत-वासियो! मुझे अपनाओ
मैं इन्कलाव हूँ, इन्कलाव लाऊँगा,
जो धीरे-धीरे तुम्हे हजम करते है
मै उन्हे समूचा खडा निगल जाऊँगा।

ओ यौवन के दीवानो! ओ मतवालो!
तुम मेरे हो, मेरे उर से लग जाओ!
इस धरती के दिन हमे बदलने होगे
तुम इन्कलाव की आग आज धधकाओ।

[विक्रम और विनोद दोनो इन्कलाव नाम-धारी व्यक्ति के हृदय से लगते हैं। धीरे-धीरे व्यक्ति मंच से अदृश्य हो जाता है।]

विक्रम और विनोद —हम आग इन्कलाबी अब धधकायेंगे
अपनी साँसो मे इन्कलाब घोलेंगे,
जय बोलेंगे अपनी धरती माता की
हम इन्कलाब की जय मिलकर बोलेंगे।

[विक्रम और विनोद मिलकर 'इन्कलाब! जिन्दाबाद!' के नारे लगाते हैं। नाटक के दर्शक भी प्रभावित होकर नारे लगाने मे योग देते हैं।]

●

पात्र-परिचय

क्या देख लिया तुमने इनका यह नाटक?
ये कुशल खिलाडी, उद्दीपित तारे है,
ये इन्कलाब की आग चले भड़काने
ये इन्कलाब के खुद ही अगारे है।

जब ऐसे-ऐसे युवक साथ है अपने
कब तक धरती का संकट दूर न होगा?
जो पनप रहा अन्याय खून पी-पी कर
वह पापी कब तक चकनाचूर न होगा?

कर्तव्य-निष्ठ ये युवक हठीले अपने
अपने समाज मे जीवन-ज्योति जगाते,
जब अवसर मिलता, ये ऐसे ही नाटक
अपने घर-बाहर सभी जगह दिखलाते।

भूमिका निभाई थी नाटक मे जिनने
था किया मञ्च पर अभी जिन्होने अभिनय,
धरती की सेवा का व्रत ठाना जिनने
उन सभी कलाकारो का पाये परिचय।

जयदेव गुप्त, बन कर विनोद आये थे
उनके साथी यशपाल बने विक्रम थे,
इतिहास बने सुखदेव मञ्च पर आये
भगवतीचरण भूगोल नही कुछ कम थे।

सहयोग सुशीला-दीदी का भी पाया
था किया सस्कृति का उनने प्रिय अभिनय,
क्या इन्कलाब का परिचय शेप रहा है?
है भगतसिह ही इन्कलाब का परिचय।

●

भगतसिंह की बहिन ने आकर सन्देश दिया—"भैया, तुम्हारी शादी होने वाली है। चाँद जैसी गोरी गोरी भाभी हमारे घर मे आने वाली है।"

अंतर्द्वन्द

"कौन विचारो मे सचमुच चन्दा-सा उतर रहा है ?
किसका रूप नगे जैसा इस मन मे उभर रहा है ?
कौन सुरभि वन कर इन साँसो मे घुलता जाता है ?
कौन आज संकल्प-विकल्पो पर तुलता जाता है ?

कौन कल्पना की गति-सा, गति वना हुआ है मन की ?
दिखा रहा रगीनी मुझको कौन नये जीवन की ?
कौन अपरिचित स्नेहिल स्वर से कहता मुझको अपना ?
किसका जादू वना हुआ है इतना सुन्दर सपना ?

कौन मुझे आवाज दे रहा मेरे ही अन्तर से ?
कौन मुझे समझाता इतने मीठे कोमल स्वर से ?
कौन कह रहा मै माँ को चन्दा-सी दुलहिन ला दूं ?
कौन कह रहा, इस घर मे मै फुल-झडियाँ वरसा दूं ?

नही! नही! यह कभी न होगा, मुझे नही समझाओ,
यह सम्मोहक पुष्प-वाण तुम मुझ पर नही चलाओ।
मेरे मन! मेरे होकर भी क्यो तुम मुझे लुभाते ?
क्यो मेरे संकल्पो को तुम सपनो से बहकाते ?

मै सैनिक व्रत ठान चुका हूँ, मुक्ति लक्ष्य है मेरा,
अपनी धरती पर लाना है मुझको स्वर्ण-सवेरा।
इन धरती के कण-कण मे फिर जीवन लहराना है,
परिणय के वन्धन मे वँध कर मुझे न रह जाना है।"

"भगतसिंह ! क्यों करते तुम ये बहकी-बहकी बातें ?
छोड़ रहे क्यों दिवस सुनहले, रजत-रंजिता रातें ?
जीवन के रंगीन क्षणों में राग-रंग अपनाओ,
यौवन पाया तो मीठे सपनों से इसे सजाओ।"

"नहीं ! नहीं ! इस इन्द्र-जाल में मुझको नहीं फँसाओ !
राग-रंग की बातें करके मुझे नहीं फुसलाओ !
राग-रंग कैसा, जब अपने घर में आग लगी हो,
सरगम कैसा, जब घर में लपटों की भूख जगी हो।

प्रबल आततायी कोई जब माँ का गला दबाये,
क्या उसका बेटा, मीठे मादक-सपने दुलराये ?
इतना बड़ा पाप मुझ से होगा न कभी जीवन में,
आग लगे ऐसे सपनों में, आग लगे यौवन में।"

"भूल रहे हो युवक ! अकेले तुम कर ही क्या लोगे ?
ले डूबेगा जोश, न जाने जाकर कहाँ मरोगे।
एक चने की क्या बिसात है जो कि भाड़ को फोड़े,
क्या बिसात है भुनगे की जो लौह-शृंखला तोड़े।

बौने अरे अपंग ! अगम पर्वत चढ़ने बैठे हो,
तिनके की तलवार, काल से तुम लड़ने बैठे हो।
जाओ ! दुनिया देखो ! अपनी यह हठ-धर्मी छोड़ो,
क्यों चुनते हो मौत ? मधुर जीवन से नाता जोड़ो।"

"आती मुझको हँसी, तुम्हारी इन बातों को सुन कर,
क्यों छोड़ूँ कर्तव्य, प्रणय के मधुर-पंथ को चुन कर,
कहाँ नहीं है मौत ? अरे ! यह तो सब को खाती है,
किन्तु वीर की मौत अमरता उसको दे जाती है।

हो मन मे संकल्प, अगम पर्वत भी झुक जाते है,
हो मन मे तूफान, प्रकृति के अंधड रुक जाते है।
बारूदी विस्फोट लिए सकल्प अटल है जिनका,
तो विध्वंसक तोप सहज बन सकता उनका तिनका।"

"दुराग्रही वन रहे भगत! तुम पीछे पछताओगे,
जिसको ठुकरा रहे, उसी पथ पर फिर तुम आओगे।
रहो कही भी, जाल रूप का तुम्हे फाँस ही लेगा
और तुम्हारा हृदय प्रवञ्चित हो होकर तडपेगा।

रूप और यौवन का जादू किस पर नही चला है!
कौन आज तक इस सम्मोहन से बच कर निकला है?
बडे-बड़े योगी मुनियो को भी इसने हड़पा है,
जो भी हुआ विरक्त, रूप से आहत हो तड़पा है।

प्रखर रूप की धूप चटकती जब अपनी पर आकर,
वड-बडो के मन को भी यह रख देती झुलसा कर।
वहिर्मुखी व्यक्तित्व रूप को देख आह भरते है,
जो है अतर्लीन, साधना मन ही मन करते है।

अत रूप के तिरस्कार का तुम अभिशाप न झेलो,
यौवन का वरदान मिल रहा सर-आँखो पर ले लो।
इन्द्र-धनुष के रंग, तुम्हारे मन पर आ बिखरेगे,
मन के कोमल भाव, मधुर इन रगो मे निखरेगे।"

"तर्क नही यह मान्य, रूप का वर्णन अति-रजित है,
तर्क नही, विष-व्यंग्य साधना के प्रति यह व्यजित है।
कैसी भी हो धूप, निवारण उसका हो जाता है,
जब कर्मठ व्यक्तित्व, कर्म मे अपने खो जाता है।

दृढ हो यदि सकल्प, धूप भी छाया-सी लगती है,
सकल्पी के लिए नही कोई माया ठगती है।
मेरा भी सकल्प, नही परिणय संभव तब तक है,
मातृ-भूमि की मुक्ति प्राप्त होती न हमे जब तक है।

वसुन्धरे! मा! तुम मेरे दृढ सकल्पो को बल दो,
दो अपना आशीष, भक्ति का संबल मुझे अटल दो।
वैभव हो सब त्याज्य, चरण-रज ही मस्तक पर झेलूँ,
मैं जीवन के खेल मौत के घर मे जाकर खेलूँ।"

गृह-त्याग

पूज्य पितृ-देव,
हो प्रणाम स्वीकार
और
क्षम्य अपराध मम आज गृह-त्याग का।
यह गृह-त्याग है पलायन कदापि नहीं,
किन्तु
संघर्ष-हेतु यह प्रस्थान है।
पुत्र-धर्म—
पुण्य-कर्म
वंश की परंपरा
मान-मर्यादा का पालन सगर्व हो।
इसी पुण्य कर्म-हेतु
कुल-धर्म रक्षण को
आज गृह-त्याग रहा पुत्र यह आपका।

मातु-श्री समुत्सुक है
पुत्र-वधू दर्शनार्थ
और तिथि निश्चित सुमंगल है पर्व की।
किन्तु
स्वल्प-बुद्धि-जन्य मेरा विश्वास दृढ़।
परिणय की ग्रन्थि
ग्रन्थि होगी कर्त्तव्य की।

अनुमति का प्रश्न कहाँ
यह संभाव्य न थी
कोई तर्क ग्राह्य मातृ-मन को कदापि नही
माता के उर को
वियोग निज पुत्र का
मान्य नही
सह्य नही
नही स्वीकार्य है।

समझे वे
यही-कही बाहर गया हूँ मैं
मेरे अभाव से न मन विक्षुब्ध हो।
जिसने पुकारा है—
माता सभी की वह
उसकी पुकार सुन
जाना कर्तव्य है।
बन्दिनी है मातृ-भूमि
परिणय है पाप मुझे
मातृ-मुक्ति लक्ष्य आज उर मे ज्वलन्त है।
स्नेहाशीष मिले
लक्ष्य-पूर्ति और सिद्धि-हेतु
दृढ संकल्प हो अटल संघर्ष मे।

किन्तु दैवयोग वश
मातृ-मुक्ति-हेतु यदि—
जीवन का पुष्प हो समर्पित सुकार्य हेतु—
पुत्र-शोक सह्य हो सगर्व
बलिदान यह
मगल प्रभात बने देश स्वातंत्र्य का।

और भी अनेक लाल
भारत की माताएँ
हँस कर लुटाती रही
देश-धर्म-कर्म हेतु ।
क्योकि बलिदान लाड़लो के व्यर्थ जाते नही,
मुक्ति प्राप्त होती
किसी फल से महान जो ।

अत निवेदन है बार-बार पितृ-देव,
मातृ-मन प्रबोधनार्थ सभी सदुपाय हो ।
भाई-बहनो को स्नेह-छाया सदैव मिले
शिक्षा[1] उचित मिले उन्हे शुभ-कर्म की ।
और विश्वास मैं दिलाता हूँ बार-बार
लज्जित करूँगा नही
रक्त निज वंश का ।
पुण्य-कर्म हेतु
मातृ-भूमि की पुकार सुन
जाता हूँ सगर्व मैं—

आपका
भगतसिह

---

१ विदेशी शासन को पलटने के प्रयत्न को भगतसिह शुभ कार्य कहते थे और इसके लिये मँजे हुए क्रान्ति-कारियो द्वारा शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक समझते थे 'शिक्षा' और 'शुभ-कार्य' आदि साकेतिक शब्द उनके कई पत्रो मे मिलते है। वे हृदय से चाहते थे कि उनके सभी भाई अपने पिता की देख-रेख मे 'उचित शिक्षा' प्राप्त करे। अपने भाई सरदार कुलतारसिह को अन्तिम पत्र उनने जेल से लिखा था उसमे भी इसी बात का सकेत मिलता है —

"बरखुरदार ! हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का ख्याल रखना।"

पंजाब का शेर कानपुर में

जीवन के प्रिय सम्वन्धो को झटक चला नर-नाहर,
मारी एक छलाग और वह था घेरे के बाहर।
वह लाहौर—जहाँ वचपन ने था कौमार्य कमाया,
भगतसिह पर तेजवत तारुण्य जहाँ झुक आया—

छोड दिया वह नगर और छोडे सब प्रिय-जन पुर-जन,
एक वूंद का जीवन था अब महासिधु का जीवन।
माँ का निश्छल प्यार, पिता का आत्म-भाव अपनापन,
भाई-वहनो और साथियो का भी छोडा वन्धन।

जीवन के रंगीन सुनहले सपने छोड चला वह,
मधुर और मादक सम्मोहन अपने छोड चला वह।
छोड चला वह मदिर सुवासित उर की शीतल छाया,
प्यार छोड़ उसने अगारो से पथ को अपनाया।

जो आया हो आहुतियो का मुख चिर उज्ज्वल करने—
जो आया हो ज्योति-प्रेरणा वलिदानो मे भरने—
जो आया हो मिट्टी की महिमा के प्रस्थापन को—
जो आया हो स्वाभिमान, गौरव के उत्थापन को—

वह कैसे बँध कर रह सकता था घर के वन्धन मे ?
पूरा देश समाया हो घर वनकर जिसके मन मे।
फाँद गया वह प्रान्त, धर्म, भाषा की दीवारो को,
फाँद गया वह सुदृढ़ स्नेह की ऊँची मीनारो को।

मातृ-मुक्ति के लिये हृदय उसका तिलमिला रहा था,
संकल्पो का रक्त साधना को वह पिला रहा था।
माँ के आँसू देख मौन रहता, कैसे संभव था,
इसीलिये उर मे ज्वाला-मुखियों का प्रादुर्भव था।

सच्चा गुरु पाने का जलता हुआ भाव उर मे था,
अब लाहौरी सिंह क्रान्ति के केन्द्र कानपुर मे था।
वही कानपुर, सत्तावन मे जिसने धूम मचाई,
उस विराट स्वातन्त्र्य-समर की जिसने लपट उठाई—

देख रहा अपनी आँखो से है वह उसी नगर को,
पहले-पहले आहुतियाँ दी जिसने मुक्ति-समर को।
वही कानपुर यह, जिसकी गलियो मे युद्ध हुआ था,
वही कानपुर, जिसका बच्चा-बच्चा क्रुद्ध हुआ था।

खेली नाना साहब ने थी जहाँ क्रान्ति की होली,
यही कानपुर मचला, लेने आजादी की डोली।
उसी भूमि के, भगतसिंह कर रहा आज दर्शन है,
जिसकी धूल देश-भक्तो को शुचि-शीतल चन्दन है।

यद्यपि क्रान्ति-भावना अब भी वैसी ही ज्योतित है,
किन्तु नगर का जीवन तब से अब कुछ परिवर्तित है।
देख रहा है सिंह, नगर क्या है, यह जन-सागर है,
इस सागर की लहर यहाँ हर अधिवासी नागर है।

नगर कानपुर, जन-कोलाहल का यह जाग्रत प्रहरी,
यहाँ कर्मयोगी-सा दिखलाई पडता हर शहरी।
जीवन इतना व्यस्त, यन्त्रवत् वह भी चलता रहता,
ढलता है फौलाद, यहाँ जीवन भी ढलता रहता।

यह जन-पथ है, सभी लोग दिखते भागे-भागे से,
पीछे से आ जाती, हटती भीड नही आगे से।
लगता, जैसे आग लगी है सब दौड जाते है,
कोई सुनता नही किसी की सब ही चिल्लाते है।

चहल-पहल है, उथल-पुथल है यहाँ सभी सडको पर,
पागलपन जैसा सवार लडकियो और लडको पर।
आप लाख बचना चाहे, पर कैसे बच पायेगे ?
क्या कर लेगे आप, अगर ये आ टकरा जायेगे।

टक्कर भी हो गई अरे ! यह लो उस चौराहे पर,
रिक्शा से आ भिडी साइकिल, खुद ही गिरी उलझकर।
रिक्शा चुप है, किन्तु साइकिल, रौब झाडती जाती
भोपू चुप है, पर जैसे घण्टी दहाड़ती जाती।

झड़पा-झडपी, अकडा-अकडी, वज उट्ठी रण-भेरी,
होने लगी भयकर तू-तू मैं-मैं, तेरी-मेरी।
भोपू ने आँखे बदली, घण्टी को डाट पिलाई—
"जा ! जा ! बडी हौसले वाली, मुझसे लडने आई।"

ताव आ गया घण्टी को, उसकी तबियत झन्नाई,
जैसे आग लग गई तन मे, रिस खाकर भन्नाई।
दो की चार सुनाई उसने, अपना रौब जमाया
अपमानित हो कर भोपू भी अब अपनी पर आया।

बोला—"पाला पडा मर्द से, अब तू यह जानेगी,
धूल चटाई नही तुझे तो कैसे पहचानेगी ?
अभी घडी कर रख देता हूँ मै तुझको धरती पर,
खीचे लेता हूँ जवान, बाते करती बढ-बढ कर।"

गरज उठी घण्टी—"आया तू बड़ा मरद का बच्चा,
मुझ जैसी से पडा न पाला, खा जाऊंगी कच्चा।
अभी पीस कर रख देती हूँ तुझको चटनी करके
करता है बकबास लफगे! पाजी दुनिया भरके!"

भोपू भिन्ना गया, सुनी जब उसने कडवी गाली,
मूँछो पर जा पडा हाथ, पर वार गया यह खाली।
मूँछो का मैदान साफ था, सभी हंस पड़े दर्शक,
रिक्शा मे बैठे सज्जन ने बात कही आकर्षक—

"लडते जाओ दोस्त! मात मत खाना पीछे हट कर,
ताव तुम्हारे बदले मैं देता अपनी मूँछों पर।"
सभी लोग खिल-खिला पडे टल गया युद्ध था भारी,
दाढी-मूँछो वाले भाई ने थी बाजी मारी।

यह लाहौरी सिह, आपने क्या इसको पहचाना?
आज कानपुर आया है, यह धरती का दीवाना।
जो पूछे, बलवन्तसिह यह अपना नाम बताता,
छद्म नाम से भगतसिह है अपना काम बनाता।

पंच-नद का बेटा
गंगा की भयंकर बाढ़ में

आज प्रकृति ने नगर कानपुर पर है घेरा डाला,
प्रलय-मेघ-दल का दिखता हर मेघ क्रुद्ध मतवाला।
क्या पर्वताकार कजरारे घन धरती पर छाये,
बरसा रहे प्रलय झुक-झुक कर क्रोधित हो अर्राये।

उमड-घुमड घन घोर-शोर कर गरज-गरज घहराते,
विजय-पताका विद्युत की है, बादल-दल फहराते।
बरस रही झर-झर-झर-झर-झर क्रोधित मूसल-धारें
बरसा रहा क्रुद्ध घन-मण्डल विध्वंसक बौछारें।

लो फुफकार उठी क्रोधित हो, गगा की भी धारा,
मचल उठी मतवाली नागिन, छोड केचुली-कारा।
मर्यादा के कूल-किनारो को यह छोड चली है,
उठी अनय की लहर विनय मे बन्धन तोड चली है।

गरज-गरज बल खाकर, इठला कर यह लहराती है,
गृह, उपवन, वन, खेत, मेढ, मैदानो को खाती है।
नाच रही उत्ताल तरगायित यह फन फैलाये,
लिये भूख विकराल बढ रही यह अपना मुंह बाए।

यौवन के उन्मद उभार-सी पल-पल पसर रही है,
विध्वंसक लीला मे अब क्या कोई कसर रही है?
झाड और झखाड, बाग-वन, सबको लील रही है,
मानव के निर्माण-स्वप्न हठ-मठ कर छील रही है।

यह पानी की धार नही, बढ रही भूख की ज्वाला,
तरन-तारिनी ही कपालिनी, बनी हुई विकराला।
प्रलय-मेघ घिर इसकी ज्वाला मे घृत डाल रहे है,
ये विनाश-लीला हित इसको स्वय उछाल रहे हैं।

कडक रही विजली, यह गगा स्वयं बनी बिजली है,
सर्वनाश का रास रचाने यह घर से निकली है।
कोई अपना रास किनारे इसके रच न सकेगा,
दिखता है, इसकी चपेट से कोई बच न सकेगा।

अगणित मानव शव, मृत-पशु धारा मे तैर रहे है,
लोक छोड यह, अन्य लोक की वे कर सैर रहे है,
भारी-भारी वृक्ष बाढ मे पड तिनके-से बहते,
मारे जब्र न रोने दे, फिर वे किससे क्या कहते ?

गगा, मानव-सृष्टि क्रुद्ध होकर संहार रही है,
प्रकृति-विजय का, वह मानव का नशा-उतार रही है।
नही बाढ, यह इसके उर की ज्वाला धधक उठी है,
प्रतिशोधी-भावना हृदय मे उसके भभक उठी है।

पर मिट्टी का पुतला मानव, कभी दाव क्या हारे,
वश मे कर ही लेता, नागिन कितनी ही फुंकारे।
वक्ष चीरता रहता है वह भीषण तूफानो का,
कोई वक्ष न चीर सका मानव के अरमानो का।

कैसी भी हो विकट परिस्थिति मानव चिर-सक्रिय है,
मौत भले स्वीकार, मनुज को नही पराजय प्रिय है।
मानव-मन की गहराई मे है सागर भी डूबे,
बौना है आकाश, मनुज के ऊँचे है मंसूबे।

ज्वाला-मुखियो की ज्वालाएँ मानव पी सकता है,
कालकूट पीकर भी मानव हँस कर जी सकता है।
वह ज्वाला का अन्तराल, घुस कर झाँका करता है,
कीर्ति अगम शिखरो की भी मानव फाँका करता है।

दो पैरो वाले प्राणी की मति मे ऐसी गति है,
इसके अरमानो की छाया, यह सारी संसृति है।
इसकी दो बाँहो मे वह बल, जिसकी थाह नही है,
जिस पर चरण न पड़े मनुज के, कोई राह नही है।

देख मौत को, नही मनुज ने भय से लोचन मूँदे,
काल-व्याल के फन कराल मानव-चरणो ने खूँदे।
आज प्रकृति सहमी-सी, मानव की जय बोल रही है,
अपने अगणित भेद स्वय उसके हित खोल रही है।

तो यह गगा भी कैसे मानव को डरपायेगी?
मानव अपनी पर आये, यह खुद ही शरमायेगी।
भीषण उछल-कूद कर यह, जितनी चाहे लहराले,
विजय-वाहिनी-सी यह अपनी विजय-ध्वजा फहराले।

यह मानव के सकल्पो को स्वय राह दे देगी,
कितनी भी अथाह हो, उसके लिये थाह दे देगी।
दृढ-परिकर हो, लो यह मानव-दल सन्नद्ध खड़ा है,
भीषण लहरो मे नावो का बेडा उतर पड़ा है।

पतवारो को, मानव के भुज-बल का मिला सहारा,
लजवन्ती-सी दिखलाई देती गंगा की धारा।
मानव ने बढ कर विनाश की लहरों को ललकारा,
अब विध्वस स्वय, मानव से ही कर रहा किनारा।-

डूब रहे जो, उन्हे सहारा मिलता है बाँहों का,
दिखता है आलोक उन्हे अब जीवन की राहो का।
घास-फूस बह जाये, पर अब मानव नही बहेगा,
मानव का यौवन कैसे भीषण अपमान सहेगा ?

मिली दिशाएँ है जीवन की, अब बहने वालो को,
सुख की साँसे पुन· मिली, पीडा सहने वालो को।
जो विस्थापित, उन्हे व्यवस्था की जाती है घर की,
जो आहत है, उन्हे छाँह मिलती विगलित अंतर की।

जो पीडित है, औपधि से उपचार किया जाता है,
उनको जीवित रहने को तैयार किया जाता है।
जीवन हित धन-धान्य और परिधान जुटाये जाते।
उनकी सुख-सुविधाओ के सामान जुटाये जाते।

मानव की सेवा करना ही यह मानव का व्रत है,
इसी लिये अब यह सेवा-दल, मानव सेवा-रत है।
खडे हुए है ये जो कुछ नर-वीर यहाँ उत्साही,
मानवता की रक्षा करने वाले वीर सिपाही।

प्रखर तेज जिसके मुख-मण्डल पर यह झलक रहा है,
अपरिमेय पौरुष जिसके अंतर से ललक रहा है—
यह नर-पुङ्गव भगतसिह है, पर बलवंत प्रकट मे,
देश-वासियों की सेवा बैठी है इसके घट मे।

जिसने महा-पंचनद की धाराओ को ललकारा,
उसे यहाँ बन गई चुनौती यह गंगा की धारा।
हिम-गिर-सा विशाल सकट भी उसको नही बड़ा है,
इसीलिये वह यहाँ काल-धारा मे कूद पड़ा है।

कई डूबते हुए प्राणियो को वह बना सहारा,
खीच काल के मुँह से, जीवन देकर उन्हे उबारा।
पौरुष के इस प्रखर-प्रदर्शन मे इसके सहयोगी,
श्री बटुकेश्वर-दत्त बने शुभ-कर्मो के उद्योगी।

श्री बटुकेश्वरदत्त, बटुक है क्रान्ति-पाठशाला के,
सौम्य रूप ये, अतर की चिर-विद्रोही ज्वाला के।
मातृ-भक्ति के स्वर्ण-पुष्प, मकरन्द स्वदेश-सुमन के,
सकल्पो के वज्र और ये अग्नि-दूत यौवन के।

श्री बटुकेश्वरदत्त बने है भगतसिह के संगी,
चाँद और सूरज से शुभ-कर्मो के ये अनुषगी।
चले उठाने कधो पर ये आजादी की डोली,
जाने कितने रत्न भरे इनकी बलिदानी भोली।

●

कथा-क्रम

माँ की बीमारी का समाचार पाकर भगतसिंह कानपुर से लाहौर वापिस पहुच गया। वह शासन की आँखो मे खटक रहा था। इसी बीच लाहौर के रामलीला मैदान मे बम फटने से कुछ व्यक्ति मर गए। दोषारोपण करके पुलिस ने भगतसिंह को गिरफ्तार कर लिया। निर्दोष सिद्ध होने पर बाद मे छोड़ना पड़ा।

सिंह पहली बार पिंजड़े में

खट-खट-खट-खट-खट स्वर सुन कर गृहिणी ने
झट-पट अपने घर का दरवाजा खोला,
आरक्षी-दल का अफसर वर्दी-धारी
कुछ दुर्विनीत स्वर मे गृहिणी से बोला—

"क्या भगतसिह घर मे है ? उसे बुलाओ !"
गृहिणी बोली, "क्या उससे काम बताओ !
मेरा बेटा बैठा भोजन करता है
जाकर कह देती हूँ, तुम नाम बताओ !"

अफसर का स्वर था दुर्विनीत फिर भी कुछ
जब पड़ी कान मे भनक, भगत आ धमका,
अगारे जैसा दीपित मुख-मण्डल था
स्वर निकला, जैसे हुआ धमाका बम का।

"सम्भ्रात वेश, फिर अविनय कैसा स्वर मे
महिलाओ से क्या यही बात का ढंग है ?
जो पहन दासता का है रखा लबादा
चढ रहा इसी का शायद मन पर रग है।"

"उद्दण्ड युवक ! अब तुम मेरे बन्दी हो
अधिकार-पत्र लो देखो यह बन्धन का,
निर्दोष प्रजा पर तुमने बम फेंका है
आरोप यही है तुम पर इस शासन को।"

"मेरा बेटा जनता पर बम फेंकेगा ?
आरोप लगाते लाज न तुमको आती ?
यदि वह चाहे तो शासन पर बम फेंके
मेरे बेटे की इतनी चौड़ी छाती।"

"माँ तुम मत बोलो, मै उत्तर देता हूँ
मैं कहता बम शासन ने ही फिंकवाया,
हम लोग खटकते है उसकी आँखो मे
यह हमे फाँसने को है जाल बिछाया।"

"इसका निर्णय तो न्यायालय मे होगा
अब जल्दी मेरे साथ चलो तुम थाने,
अब दूध छटी का तुम्हे याद आयेगा
अब लग जायेगी सारी अकड़ ठिकाने।"

"हाँ, प्रस्तुत हूँ चलने से क्या डरता हूँ ?
क्यो मुझे जेल का हौआ तुम बतलाते ?
वह तो इस घर की परम्परा पावन है
जब जेल बुलाती है, हम हँस कर जाते।

पर इसी बात का मुझको भारी दुख है
शासन ने है मिथ्या आरोप लगाया,
जब लोग सुनेगे, वे मन मे सोचेगे
क्या भगतसिह ने ही यह पाप कमाया ?

"बेटे तुम क्यो इसकी चिन्ता करते हो ?
जो सत्य, प्रकट होकर ही वह रहता है,
घन-पटल, भले रवि को कुछ ओझल करले
पर वह न कभी चिर आच्छादन सहता है।"

"हाँ माँ! यह तो होगा ही, मैं जाता हूँ
तुम मुझ पर संचित स्नेहाशीष लुटाओ,
जा रहा पुत्र पुरखो के पावन पथ पर
मगल वेला मे नही नयन छलकाओ।"

"बेटे ! मत समझो आँखे उमड़ रही है
ये उमड़ रही है उर से तुम्हे दुआएँ,
माताओ की आँखे तो छलकेगी ही
वे कैसे बन सकती निर्जीव शिलाएँ।

आँखों की छलकन किन्तु नही यह कहती
मै कायर हूँ, तुम जाते मैं रोती हूँ,
धुँधवित मोह ने दृष्टि-कोण कर डाला
इस खारे जल से मैं उसको धोती हूँ।

तेरे बापू भी खुश होगे यह सुन कर
चाहा करते, तू कुछ अनुभव पा जाये,
यदि कभी और भी आये ऐसे अवसर
तो उन्हे देख कर तू न कभी घबराये।"

माँ और अधिक कुछ कहे, पूर्व ही इसके
जालिम ले गये हरण कर उसकी निधि को,
आँखो का तारा आँखो से ओझल था
कितनी फैलाती वह निज दृष्टि-परिधि को।

कथा क्रम

दशहरा बम-कांड मे निर्दोष सिद्ध होने पर भगतसिंह ने पिता के कहने से दूध की डेरी खोल दी, पर जो व्यक्ति खून का धधा करने आया हो, उसे दूध का धधा कैसे अच्छा लग सकता था। अब उसने हमेशा के लिए घर छोड दिया और क्रान्तिकारियो से जा मिला।

अवधूतों की भूत-लीला

सुने हम, इस विजन मे बैठ कर ये चार दीवाने
विचारो मे विचर कर, किस विषय पर बात करते है,
हृदय के सिधु मे है भावना के कौन से मोती
जिन्हे थे खोज लाने को कमर कस कर उतरते है।

कथन है राजगुरु का, "क्या अजब है चाल दुनिया की
जलाती जीवितो को, वह मरो के गीत गाती है,
तड़प कर भूख से दम तोडते जाये भले जीवित
मरो के भूत को वह भोग व्यजन के लगाती है।

हुई ससार की जो प्रतिक्रिया मुझ पर, बहुत कटु है
जमाने ने सताया किस तरह, मै यह बताता हूँ,
हुई घटना कभी जो, आज तक वह चुभ रही उर मे
सुनी को क्या सुनाऊँ, आप बीती ही सुनाता हूँ।

घिसट कर कट गया जो, बात है यह उस लडकपन की
किसी अपनी विकट धुन मे झगड चल दिया घर से,
चला था सोचकर मै, खोज लूगा देवता कोई,
पता क्या था कि मेरा बँध चुका है भाग्य पत्थर से।

कचोटा भूख ने, दुर्भाग्य ने दी झिड़कियाँ मुझको
चबा कर पत्तियाँ ही पेट मै भरता रहा अपना,
मिली पिक-चोंक से खाई हुई जो आम की गुठली
निगल उसको निहारा तृप्ति का मैने सुखद सपना।

भटकता इस तरह भूखा रहा मै तीन दिन वन में
कुए का घाट सूना देख कर मैं रात को सोया,
बँधा था पेट से पत्थर, भुला दी भूख सब मैने
रहा मै चुप, मगर पत्थर विचारा रात भर रोया।

धुधलके मे खुली जब आँख मेरी, देखता क्या हूँ
खड़े कुछ लोग काफी दूर, हाथो मे लिये पत्थर,
उनीदा-सा भला मैं क्या समझता इस परिस्थिति को
सुनाई पड़ सके अस्फुट मुझे उस भीड़ के ये स्वर—

अरे यह भूत है कोई, यहाँ बच्चा बना सोता
खडा होकर विकट यह देह फिर अपनी पसारेगा,
धरेगा रूप कुत्तो-बिल्लियो के यह कई उठ कर
हमे छलने, विविध स्वर से अभी हम को पुकारेगा।

समर्थन इस कथन का दूसरे ने कर दिया कहकर—
मिला यह एक दिन था और भी मुझको यहाँ, यो ही,
कुए मे धम्म से यह कूद ओझल हो गया क्षण मे
उठाया एक पत्थर मारने मैने इसे ज्यो ही।

कथन था तीसरे का शत्रुता इससे नही अच्छी
अँधेरे या उजाले, क्या पता कब चोट कर डाले,
जिसे लग जायगा पीछा नही यह छोड़ने वाला
भगाओ इसलिये इसको, न प्राणो के पड़े लाले।

हमे लगता, किसी की आत्मा भूखी भटकती है
हमारा धर्म, इसकी तृप्ति के साधन जुटाये हम,
करे हम लोग भण्डारा, चकाचक माल उड़ने दे
खिला कर ही, पिलाकर ही कही इसको भगाये हम।

कथन ने पुष्टि पाई, किन्तु सशोधन तनिक यह था
अभी इसको भगादे हम सभी सधान कर पत्थर,
तनिक देखे, दिखाता कौन-सी यह भूत लीला है
खड़े हम लोग इतने, फिर हमे किस बात का है डर ?

हवा मे सनसनाते आ गये पत्थर कई मुझ तक
लपक कर मै उठा, सोचा कही छिप सर बचाऊँ मै,
लपकना, हड़बडाना, वह उछल कर भागना मेरा
नजारा और ही कुछ बन गया, वह क्या सुनाऊँ मैं ?

सरो पर पाँव रख कर, पीठ देकर सूरमा भागे
इसी क्रम मे शरारत एक मैंने की बड़ी भारी,
कुए के उस तरफ छोटी शिला जो थी, उठाकर वह
उझक कर, कूप-जल में वह शिला भरपूर दे मारी।

धमाका जो सुना, मुड कर सभी वे सूरमा बोले—
कहा था, वह कुए मे कूद बैठा देख कर हम को,
मगर वह प्रेत-भण्डारा करेगे शीघ्र हम मिल कर
भगाना है हमे अपने दिलो से सत्य इस भ्रम को।

सुना ? कैसे विकट भट भाग कर वे बच गये उस दिन
मगर है सत्य यह भी, जान मैंने भी बचाई थी,
दुरंगी नीति दुनिया की उसी दिन जान पाया मैं
चमकती आग-सी उस दिन प्रकट देखी सचाई थी।

चढा कर दान का—धर्माचरण का आवरण, दुनिया
घृणित कमजोरियाँ अपनी कई हम से छिपाती है,
लगाते ठोकरे जो, जोड़ती है हाथ वह उनके
दिखाते नम्रता जो, आँख यह उनको दिखाती है।

कई अनुभूतियाँ कटु, हृदय मे मेरे कसकती है
विकट विद्रोह अंतर मे कसक ने ही जगाया है,
बहारो ने भरी प्रतिशोध की बिजली विचारो मे
जमाने की हवाओ ने मुझे बागी बनाया है।

बदलना है हवाओं को, यही सकल्प अब मेरा
विषैले दाँत है जितने, उन्हे गिन-गिन उखाडूँगा,
सजग विद्रोह अतर मे, नही प्रतिरोध अब संभव
स्वरो मे गर्जना ले क्रान्ति की, अब मैं दहाड़ूँगा।"

कथन यह राजगुरु का सुन, सभी के हृदय भारी थे
बदलने रंग मुखरित अब हुआ आजाद का स्वर था,
प्रखर उत्ताप भर कर सूर्य का निज विप्लवी उर मे
सभा मे बोलता अब सुना पड़ा यह चन्द्रशेखर था—

"गया था ग्वालियर मै, विप्लवी सेना बनाने को
सुना था तवरघारी[1] सिह पढते है वहाँ रह कर,
विचारा, हो गये यदि दीक्षित ये क्रान्ति के दल मे
हमारा सगठन यह हो सकेगा और भी दृढतर।

---

१. तवरघार=ग्वालियार राज्य और आस-पास का वह प्रदेश जिसमे तोमर ठाकुर अधिक रहते है।

उन्ही के साथ झाँसी के निवासी, मित्र विश्वासी
हमारे क्रान्ति-पंथी वीर श्री माहौर रहते थे,
सुनाते थे कई किस्से मुरेना भिण्ड[1] के बहुधा
वहाँ का तेज है पानी, सदा यह बात कहते थे।

फुलाते वक्ष थे कहकर—किसी की जीभ यदि चलती
नही कुछ देर, उत्तर मे किसी के हाथ चलते है,
न यदि दो-चार सर फूटे, हुआ बदनाम वह झगड़ा
उरो मे मारने के काटने के भाव पलते है।

यही था भाव, जिससे ग्वालियर मेरा बना प्रागण
सुहृद निज मित्र उन सिहो-सपूतो को बनाता था,
बडे ही चाव से बाते सभी उनकी सुना करता
बड़ी ही युक्ति से मै बात अपनी भी सुनाता था।

मिला सयोग, छात्रावास[2] मे मैं जा टिका उस दिन
अचानक रात मे भगदड मची, हल्ला हुआ भारी
उठा जो हडबडा कर मैं, दिखे सब लोग चिल्लाते—
बचो सब लोग, हमला कर रहे है भूत भयकारी।

---

१. भिण्ड-मुरेना=पुराने ग्वालियर राज्य तथा वर्तमान मध्य प्रदेश के दो जिले जहाँ के निवासी अपनी आन-बान और वीरता के लिए प्रसिद्ध रहे है।

२. छात्रावास=विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर (वर्तमान महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय) का छात्रावास पहले कॉलेज प्रागण मे ही था। इसी छात्रावास मे अपने मित्र भगवानदास माहौर के साथ चन्द्रशेखर आजाद ठहरा करते थे। उस समय उन्होने अपना नाम हरीशकर घोषित कर रखा था। भूत बन कर चन्द्रशेखर आजाद को डराने की योजना छात्रो ने बनाई थी। इस घटना का उल्लेख भी भगवानदास माहौर ने अपने ग्रन्थ 'यश की धरोहर' मे किया है। आगे चलकर श्री माहौर ने 'चन्द्रवदनी का नाका' मुहल्ले मे किराए से मकान ले लिया था जिसमे चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिह बहुधा ठहरा करते थे।

दिखाई भूत-लीला दी मुझे कुछ दूर सचमुच ही
उगलते वृक्ष थे लपटे, विकट अंगार झड़ते थे,
वहुत साहस दिखाता छात्र-दल था पास जाने का
मगर भय खीच लेता, पाँव आगे को न पड़ते थे।

किसी छत पर उपद्रव कर रहा कंकाल था नर का
उछलता-कूदता वह हड्डियाँ निज खड़खडाता था,
भयानक वोलियो से वह भयावहता वढाता था
कभी वह झूम कर चलता, कभी पग लड़खड़ाता था।

कई नर-मुण्ड दिखते नाचते थे एक टंकी पर
मुखो से लपलपाती दिख रही थी क्रुद्ध ज्वालाएँ,
लगा, जैसे कि वढकर वे सभी कुछ भस्म कर देगी
लगा जैसे कि सव कुछ लील लेगी अग्नि-मालाएँ।

सभी यह भूत-लीला देख कर भयभीत होते थे
सभी थे साथ, फिर भी दिख रहे थे काँपते थर-थर,
इसी क्रम मे हुये सकेत कुछ, कुछ फुसफुसाहट भी
वना मैं लक्ष्य, उनके सुन पडे अव साफ थे ये स्वर —

वड़ी ही शान की वाते वघारा मित्र तुम करते
कहा करते सदा, जो, आज वह करके दिखाओ तुम,
परीक्षा वीरता की आज है पडित हरीशकर!
अगर हो वीर, भूतो को तनिक जाकर भगाओ तुम।

भला यह वात तीखी किस तरह होती सहन मुझको
लपक वैठा, उठाता-वीनता मैं राह के पत्थर,
जिधर होती दिखाई भूत-लीला दी, उधर वढकर
निशाना साध, पत्थर सनसनाये खूव कस-कस कर।

जिधर कुछ देर पहले हो रही 'हू ! हू!' भयंकर थी
सुनाई अब दिये उस ओर, हाहाकर के स्वर थे,
धमा-धम कूद कर जो भूत भागे क्या मची भगदड
टँगे जो रह गये, वे काँपते सब भूत थर-थर थे।

बडा-सा एक पत्थर ले, दिया कंकाल मे जड़कर
लगा वह, हड्डियो की चरमराहट भी सुनाई दी,
वहाँ से कूद कर दो भूत कमरो की तरफ भागे
दुवक कर रह गये कुछ और रक्षा की दुहाई दी।

निशाना मैं न टकी को बना पाया कि पहले ही
लपक सब मित्र आ धमके, कहा—अब युद्ध मत ठानो,
नही कोई कही भी भूत, साथी है सभी अपने
किसी की खोपडी खिल जायगी पत्थर न संधानो।

सभी ने घेर कर वह उपल-वर्षा रोक दी मेरी
उतारा युक्ति से जो भूत टकी पर टँगे अब तक,
उन्हे भय था कि भय से पैर चूका तो न बचने के
इसी से सावधानी हो गई थी उन्हे आवश्यक।

बधाई भूत सब आकर स्वय थे दे रहे मुझको
विपुल शाबाशियाँ देकर गले मुझको लगाते थे,
बड़े ही गर्व से बाते सभी दुहरा रहे थे वे
बड़े अपनत्व से वे पीठ मेरी थपथपाते थे।

कथन था एक का—हमने कई है सूरमा परखे
हुए इस भूत-लीला से सभी के हौसले ढीले,
बचा कोई मिठाई बाट कर, कोई दुहाई दे
पडा बीमार कोई, सूख कर कुछ हो गये पीले।

कथन था अन्य का—पडित हरीशकर नही पोगे
लगेगा भूत क्या इनको, न खुद ये भूत से कम है,
कथन था तीसरे का—ये परीक्षा मे खरे उतरे
सहायक और सच्चे मित्र इनके आज से हम है।

सुना, वे मित्र[1] मेरे इस तरह सब बन गये पक्के
सभी जी-जान से है साथ देने के लिये तत्पर,
अगर मै डर गया होता, नही थी खैर तो मेरी
व्यवस्था चूड़ियो इत्यादि की उनने रखी थी कर।

इसी से तो कथन मेरा, दिलेरी बहुत आवश्यक
हथेली पर रखे सर हम सभी को घूमना होगा,
हृदय मे जागती लपटे लिये हमको विचरना है
जगा कर क्रान्ति की लपटे, शिखर को चूमना होगा।

अगर डर कर रहे हम तो नही कोई ठिकाना है
कई है भूत दुनिया मे, हमे जो लील जायेगे,
अगर हम भूत-लीला का करारा दे सके उत्तर
बनेगे मित्र वे अपने हमे सर पर बिठायेगे।"

कथन आजाद का पूरा हुआ, सुखदेव अब बोले—
"दिलेरी की कही जो बात उससे मित्र सहमत हूं,
नही कमजोरियाँ अपनी छिपाई आज जा सकती
दशा क्या आज अपनी हो रही, मै, पूर्ण अवगत हूँ।

---

१. मित्र—चन्द्रशेखर आजाद ने अपने कुछ चुने हुये मित्रो की सहायता से ग्वालियर के जनकगज मुहल्ले मे बम का कारखाना खोला था। यहाँ से बमो मे भरने के लिये मसाला तैयार करके अन्य कारखानो को भेजा जाता था।

कहानी है नही जो कह रहा, यह सत्य घटना है
हमारे एक पुरखे ने मनुज का जन्म पाया था,
मगर ऐसा मिला शैशव कि चूहे खा गये उनको
मनुज का रक्त पीकर क्षुद्र चूहो ने पचाया था।

बहुत आती हँसी मुझको, कभी जब सोचता हूँ मै
भला इसान चूहो से गया-गुजरा नही क्या अब ?
हमारे खून का वह ताप क्यो ठण्डा हुआ इतना ?
कहाँ वह वीरता का दम्भ अपना सो गया है सब ?

हमारी वीरता इतिहास की है वस्तु अब केवल
हमारी शक्ति शब्दो मे उलझ कर छटपटाती है,
हमारा सगठन मस्तक झुकाए आज बैठा है,
हमारी ईर्ष्या मैदान मे जौहर दिखाती है।

सरासर हो रहे अन्याय, क्यो चुपचाप सहते हम ?
हमारी भावनाएँ क्यो नही बारूद बनती है ?
कलेजा चीर दे उनका, हमारा खून जो पीते
न क्यो वीराङ्गनाएँ आज ऐसे सिह जनती है ?

अगर जीना हमे है, शान से ही तो जिये हम सब
करे हम शक्ति का सचय, जमाने को बदल दे हम,
दिखाता आँख जो हमको उठा कर गर्व का मस्तक
किसी अभिमान का वह शीष पैरो से कुचल दे हम।"

भगत ने सिह जैसी गर्जना कर पुष्टि की इसकी
"जियेगे और सचमुच शान से ही अब जियेगे हम,
इरादो मे हमारे खून की गर्मी भभकती है
नही आँसू पियेगे, खून दुश्मन का पियेगे हम।

हमारे देश की मिट्टी हमे सौगन्ध देती है
जवानी इस धरा की शान के हित भूल जायेगी,
किसी अन्याय को हम पीठ देने के नही आदी
लगेगी गोलियाँ, छाती हमारी फूल जायेगी।

हमारा है यही सकल्प, जीवन देश का जीवन
यही सकल्प, बिस्तर पर नही सो कर मरेगे हम,
करेगे मौत के भी दाँत खट्टे जूझ कर उससे
मरेगे शान से हँसकर, नही रोकर मरेगे हम।"

क्रांतिकारियों का केन्द्रीय-संगठन

सकल्प यही जलता दिखलाई देता है
जो जमे हुए, इन दीवानो के अन्तर मे,
जो क्रान्ति-वीर हमको बैठे दिख रहे यहाँ
फीरोजशाह के जीर्ण किले के खण्डहर मे।

संगठन क्रान्ति का केन्द्रीय विकसित करने
भारत के कोने-कोने से ये आये है,
साम्राज्यवाद को जला भस्म कर देने ये
अरमानो के जलते अंगारे लाये है।

आमन्त्रित थे जितने सदस्य, आये सब ही
कारणवश नर-नाहर आजाद नही आया,
बहुमत का निर्णय मान्य मुझे होगा दिल से
सन्देश समिति को उसने अपना भिजवाया।

लो, उद्बोधन कर उठे आज के संयोजक
विजयकुमार सिन्हा—यह हम सब का सौभाग्य यहाँ जो एकत्रित,
अब नई नीति का निर्धारण करना हमको
अब केन्द्रीय-संगठन योजना हो चर्चित।

सबसे महत्व की बात यही, वह जा सकता
आतंकवाद की नीति न जिसे अभीप्सित है,
अन्यथा भग यदि गोपनीयता की दल की
होगा वह गोली का शिकार, यह निश्चित है।

प्रस्ताव आप जो भी चाहे रख सकते है
अनुमोदन या विरोध जो भी हो, हो खुल कर।
मतभेद व्यक्त करने मे हो सकोच नही
जो भी निर्णय होगा, वह होगा मिल-जुल कर।

भगतसिह— प्रस्ताव कर रहा प्रस्तुत मै अपना विनम्र
हो प्रजातन्त्र सेना का फिर से नामकरण,
यह शब्द जुडे इसमे 'समाजवादी' पहले
यह करे हमारी रीति-नीति का अलकरण।

इसके हित जो मैं तर्क दे रहा, वह यह है
रचना समाजवादी ही अपना ध्येय रहे,
है हमे तोडना वर्ग-भेद की दीवारे
समता समानता अपनी सदा अजेय रहे।

जब होगा अपना शासन, यही नीति होगी
शासन मे सारी जनता हाथ बँटायेगी,
अपने निर्वाचित प्रतिनिधियो के द्वारा वह
अपनी शुभ-सम्मति। शासन तक पहुँचायेगी।

फणीन्द्र घोष— प्रस्ताव हुआ प्रस्तुत, इससे विरोध मुझको
दल करे नाम परिवर्तित, यह क्यो आवश्यक ?
जो नाम पुराना, वही चले, सबको प्रिय है
वह नाम हमारे मनोभाव का है ज्ञापक।

कुन्दनलाल— यह रूढिवाद की गन्ध नहीं शोभित हमको
क्यो नही छूटती हमसे लीक पुरातन की,
क्यो हमे अन्ध-श्रद्धा अब भी पथ भ्रष्ट करे ?
क्यो नही छूटती जड़ता है अपने मन की ?

भगतसिह— यह एक तर्क हो मेरा और विचारणीय
यदि जनता का सहयोग नही हम पायेगे,
कितने दिन यह आतकवाद चल पायेगा ?
हम सब कितने दिन अपना ढोल बजायेगे ?

इसलिये हमे विश्वास दिलाना जनता को
हम उसके है, उसके ही सदा रहेगे हम,
जूझेगे हम जीवन भर जनता के हित ही
यदि कष्ट मिले भीषण, तो उन्हे सहेगे हम।

हम प्राप्त कर सके जनता का विश्वास अगर
तो समझो यह, निश्चित ही जीत हमारी है,
जन शक्ति प्रवल जग मे सदैव होती आई
दानवी-शक्ति केवल जन-वल से हारी है।

फणीन्द्र घोष— इन कामो मे जनता क्यो हस्तक्षेप करे ?
विप्लव क्या सम्भव हो सकता है जन-मत से ?
जनता को तो हम जैसे चाहे, हॉकेगे
वह भेड-चाल चलती है अपनी आदत से।

कुन्दनलाल— जन-वल के प्रति आक्षेप नही यह उचित मित्र
सहयोग हमे जनता का अति आवश्यक है,
हम तो केवल है हाथ-पैर भर जनता के
सब साधन-संकल्पो की जनता साधक है।

ब्रह्मदत्त— विश्वास दिला सकते हम कैसे जनता को ?
हम लोगो से जनता खुद ही कतराती है,
वह दूर भागती हमसे, हौआ समझ हमे
हम लोगो से जनता वेहद घवराती है।

भगतसिह— मै इसीलिये कहता, हम उसका दिल जीते
रखना होगा अपना पावन आचरण हमे,
व्यवहार हमारा जनता का विश्वास बने
सहयोग सदा जनता का करना वरण हमे।

आतकवाद ही केवल अपना लक्ष्य नही
आतकवाद तो केवल अपना साधन है,
इस साधन से अर्जित करना है मुक्ति हमे
जो साध्य हमारा, वह जनता का शासन है।

शासन, जिसमे शोषित-शोपक का वर्ग न हो
वह शासन जिसमे कोई भूखा सो न सके,
इह धरती पर हम को शासन लाना, जिसमे
श्रम की साँसो पर पूँजी हावी हो न सके।

जो स्वेद वहा, धरती से सोना उपजाये
उस सोने मे हो उनकी भी साझीदारी,
उन लोगो के वच्चे भूखे नगे न रहे
उन लोगो को अपनी साँसे न लगे भारी।

ब्रह्मदत्त— इसका मतलव तो यह दिखता, इस धरती पर
तुम चाह रहे हो, साम्यवाद को ले आना,
जो साम्यवाद इस धरती के अनुकूल नही
इसको लाकर हमको न पड़ फ़िर पछताना।

भगतसिह— मै नही किसी भी वाद-वाद के चक्कर मे
हो नामकरण कुछ भी, हमको क्या करना है ?
समृद्धि हमे केवल अभीष्ट है जनता की
जनता को जीवित रखने, हमको मरना है।

निश्चित ही है, या तो हम जूझ मरेंगे सब
या फिर हम फाँसी पर लटकाये जायेंगे,
यदि मिली हमे यह मौत, सफल जीवन समझो
जो मर कर भी हम काम किसी के आयेंगे।

इस भाँति मर सका अगर एक भी हम मे से
तो कोटि-कोटि जन को वह जाग्रत कर देगा,
साम्राज्यवाद को खा कर ही दम लेगी जो
बलिदान हमारा, ऐसी ज्वाला भर देगा।

इसलिये निवेदन, आग्रह, यह सब कुछ मेरा
अपने समाज के हित ही हम सब जिये-मरे,
उद्देश्य रहे अपना समाजवादी रचना
हम वाद-वाद की चिन्ता बिलकुल नही करे।

यदि पिता पेट भरता अपने घर मे सबका
क्या उसे लगे कहने हम सभी साम्यवादी,
जाने क्यों अपनी कुछ विशिष्ट सतुष्टि हेतु
हो गये नाम कुछ रख देने के हम आदी।

इसलिये निवेदन फिर मेरा यह सानुरोध
हो प्रजातन्त्र-सेना अपनी समाजवादी,
यह परिवर्तन स्वीकार हर्ष से करे सभी
समझे न, नीति जा रही शक्ति से यह लादी।

सभी सदस्य— स्वीकार हमे ! स्वीकार हमे ! यह सशोधन
उद्देश्य रहेगा अब समाजवादी, दल का,
अपने समाज के दृढ विश्वास बनेगे हम
शासन परिचय पायेगा अब अपने बल का।

विजयकुमार सिन्हा—हम हर्षित है, शुभ संशोधन स्वीकार हुआ
प्रस्ताव और भी नए-नए आमन्त्रित है,
प्रस्ताव सर्व-सम्मति से ही स्वीकार करे
खुल कर दे अपने तर्क, न भाव नियंत्रित है।

मनमोनह बैनर्जी— हम हुए दीक्षित सभी, क्रान्तिकारी दल मे
इसलिए धर्म से अव हम शिथिल करे वन्धन,
यह क्रान्ति स्वय ही अव हमको हो नया धर्म
इसलिए और वन्धन से मुक्त रहे जीवन।

मतभेदो का कारण वन सकता धर्म हमे
यह ऊँच-नीच के भेद हृदय मे भर सकता,
इन भावों से यदि हमको मुक्ति न मिल पाई
तो काम भला फिर अपना दल क्या कर सकता ?

इसलिए हमे कम से कम यह आवश्यक है
हम धर्म-चिन्ह धारण न करे कोई तन पर,
इस धरती के वेटे सव भाई-भाई है
दुर्भाव नही आने दे हम कोई मन पर।

फणीन्द्र घोष— हम धर्म-चिन्ह धारण न करे, यह प्रश्न जटिल
दे भगतसिह इस जटिल प्रश्न का अव उत्तर,
दाढ़ी उनको ही मुडवानी होगी अपनी
कटवाने होगे केश उन्हे अपने प्रियतर।

भगतसिह— अनुमान आपका विलकुल ही असत्य प्रियवर !
क्या केश, कटा सकता हूँ मैं अपना मस्तक,
दाढी क्या, अपनी इच्छाये सब मुड़वा दूं
यदि मातृभूमि के हित हो यह सब आवश्यक।

अब धर्म न कोई अन्य हमारे दल का है
है मातृ-भूमि की मुक्ति धर्म केवल अपना,
इसके हित हम सर्वस्व त्याग कर सकते है
संकल्पो की है पूर्ति मर्म केवल अपना।

इसलिए मान्य हम यह सुन्दर प्रस्ताव करे
अपने पथ मे अब नही धर्म आड़े आये,
कर्तव्य हमारा मातृ-भूमि के प्रति है जो
अपने इस दल का वही धर्म अब कहलाये।

शिव वर्मा— अस्तित्व धर्म का जो मैने समझा यह है
संकल्पो को बल देकर हमे उठाये वह,
पथ विचलित हो हम, तो वह हमे सचेत करे
यदि भूले-भटके हम, तो मार्ग दिखाए वह।

यदि धर्म स्वय कर्तव्यों की इति बन जाए
तो धर्म हमे ऐसा कदापि स्वीकार नही,
शुचि कर्तव्यो की पूर्ति हेतु जब हम दृढ है
तो सह्य हमे पथ मे कोई दीवार नही।

इसलिए समर्थन मेरा भी प्रस्ताव हेतु
हम धर्म-चिन्ह धारण न करे अपने तन पर,
इस धरती के बेटे हम भाई-भाई है
दुर्भाव नही आने दे हम कोई मन पर।

सभी सदस्य— हम सहमत है! हम सहमत है! प्रस्ताव मान्य
अब धर्म हमारा है धरती की आजादी,
अब जन-जन का उत्थान धर्म होगा अपना
अब धर्म हमारा अन्यायो की बर्बादी।

विजयकुमार सिन्हा—प्रस्ताव बहुत ही शुभ हमने स्वीकार किया
करने विचार, प्रस्ताव और भी आये अब,
जो आवश्यक हो उद्देश्यो की पूर्ति हेतु
आचरण-सहिता ऐसी आज वनाये हम।

सुरेन्द्र पांडे—
निज कार्य-कलापों की दृढता से पूर्ति हेतु
हो अपने दल की नीति एक, यह आवश्यक,
वह नीति करे सब कर्तव्यों को निर्देशित
वह नीति हमारे सब कामों मे हो व्यापक।

आतंकवाद ही अपनी नीति रहे अविचल
यदि हो विरोध, गोली से उसे उछाले हम,
यदि धनाभाव वाधक हो अपनी सिद्ध हेतु।
जो धनी लोग, उन सब पर डाके डाले हम।

सुखदेव—
आतंकवाद ही रहे हमारा अस्त्र, किन्तु
हमको अभीष्ट हो व्यर्थ खून-खच्चर न कभी,
हत्यारो का पद पाना हमे अभीष्ट नही
वह पंथ घृणा का, हमको श्रेयस्कर न कभी।

भगतसिह—
सहमत हूँ मै साथी के इस संशोधन से
हम नही खून-खच्चर हत्या के हामी हो,
आतंकवाद का है यह अर्थ कदापि नही
हम मानवता को तजे—निम्न-पथ-गामी हो।

हम मूल्य समझते जैसे अपने प्राणो का
औरो के प्राण हमे वैसे ही हो प्यारे,
आतंक हमारी नीति रहे पर ध्यान रहे
हम नही कहाये जाये हिंसक हत्यारे।

हत्या करना भी हमे क्षम्य हो केवल तब
जब राष्ट्रीय सम्मान दाव पर लग जाए,
अपराधी वह घर का हो या फिर बाहर का
अपने हाथो वह दण्ड मौत का ही पाए।

जो दगा करे अपने दल से, वह बचे नही।
विश्वासघात का दण्ड सदा ही गोली हो,
इस मृत्यु-दण्ड की रहे व्यवस्था सबको ही
घाती वह अपना सगा या कि हमजोली हो।

वैसे जब तक बन सके, खून-खच्चर टाले
हम हत्या से बचने के सभी उपाय करे,
पर जहाँ चोट हो राष्ट्रीय गौरव पर, तो
हम खून बहाते हुए किसी का, नही डरे।

जयदेव कपूर— आतकवाद की नीति यही हो मान्य हमे
डाको के प्रति भी यही नीति हम अपनाये,
जब तक सभव हो, जनता पर न हाथ डाले
शासन को ही हम अपना पौरुष दिखलाये।

जो मान-प्रतिष्ठा पर है डाके डाल रहा
हम भी तो उस शासन पर ही डाके डाले,
हम यही नीति अपनाये जैसे को तैसा,
सिद्धान्त यही हम अर्थ-व्यवस्था हित पाले।

सभी सदस्य— संशोधन ये दोनो ही है स्वीकार हमे
है विषय बहुत, उन सब पर शीघ्र विचार करे,
हम लोगो के प्रति जो जनता मे भ्रम फैला
अच्छे कृत्यो से हम उसका परिहार करे।

जो क्रान्ति-संगठन हेतु और योजना वनी
वह यह थी जो उन सब लोगों ने स्वीकारी,
जो हुए सर्व-सम्मति से निर्णय, वे ये थे
यह था विधान जो निर्मित हुआ क्रान्तिकारी।

[१]

केन्द्रीय समिति हो एक क्रान्ति के कामो को
उसके सदस्य हम मे से केवल सात रहें,
जो गोपनीय हो तत्व परम, अपने दल के
वे इन्ही सदस्यो को ही केवल ज्ञात रहे।

[२]

जो काम वताया जाये जिसको, पूर्ण करे
कारण पूछे इसका उसको अधिकार नही,
सन्देहों की उत्पत्ति परस्पर हो न कभी
हो आपस मे ऐसा कोई व्यवहार नही।

[३]

दल का कोई सचालक होगा नही एक
जो कार्य हो रहा वितरित, सव स्वीकार करें,
अपने-अपने सभागो मे संगठन सुदृढ
कैसे होगा, इसका सघटक विचार करे।

[४]

पजाव प्रान्त के संयोजक सुखदेव रहे
शिव वर्मा हो संयुक्त-प्रान्त के अधिकारी,
साथी फणीन्द्र का कार्य-क्षेत्र होगा विहार
संगठित शक्ति हो सभी जगह विप्लवकारी।

[५]

अध्यक्ष केन्द्र के, साथी कुन्दनलाल रहे
सेना विभाग के मुख्याधिप आजाद 'बने,
छापे-मारी की वे योजना बनाये सब
निज कार्य-सिद्धि के लिये अटल सकल्प ठने।

[६]

हों साथी विजयकुमार और श्री भगतसिह
अधिकारी सब सभागो के सयोजन के,
जा-जाकर जोड़े क्रान्ति-सूत्र भारत भर मे
है कुशल खिलाड़ी दोनो ही अपने फन के।

[७]

घर-बार सदा को छोड़े सब अपने-अपने
सब क्रान्ति-यज्ञ की करे भयकर तैयारी,
जल जाय दासता का कलक उस ज्वाला मे
स्वातत्र्य-भोर का उदय बने मगलकारी।

लाला लाजपतराय का जीवनोत्सर्ग

पजाब-केसरी वीर लाजपत के तन पर
अँग्रेजी शासन ने डण्डे वरसाये थे,
आघात क्रूर, उस वीर पुरुप ने सयम से
निज मातृ-भूमि के हित-चिन्तन मे खाये थे।

साण्डर्स, काल का दूत उन्हे बन कर आया
दानव ने थे उन पर भीपणतम वार किये,
मर्मस्थल पर थे लगे प्रबल आघात कई
उस जालिम ने थे उन पर कई प्रहार किये।

उस दिन सन्ध्या को हुई सभा जब आयोजित
घायल होकर भी वीर पुरुप हुकारा था,
यह लगा कि जैसे नाग भयकर आहत हो
अपने घातक को डस लेने फुकारा था।

अग्रेजों को सम्बोधित कर वह गरज उठा—
"मत समझो, यह तुमने मुझ पर है वार किया,
तुमने कुठार अपने पैरो पर ही मारा
साम्राज्यवाद को कफन स्वय तैयार किया।"

गर्जना वीर की रही गूँजती कानों मे
शासन के गुरगो को न नीद तब तक आई,
उस वीर पुरुप ने की जब तक स्वीकार नही
कर जीवन का उत्सर्ग, मौत की पहुनाई।

हँसते-हँसते वह चढा गया निज प्राणो को
अपनी धरती की आजादी की वेदी पर,
वह आजादी, जो बनी दीप की लौ जैसी
भावना शलभ की प्राणो मे देती है भर।

यह मौत देश के लिये चुनौती बन बैठी
इसने भारत के प्राणो को झकझोर दिया,
स्वीकार चुनौती भगतसिह ने कर डाली
उस सिह पुरुष ने मन मे यह प्राण ठान लिया—

"धरती की माटी को छूकर मेरा प्रण है
लालाजी का बदला हत्यारे से लूँगा,
जिसने इनको मारा, मै उसका खून वहा
साम्राज्यवाद के पडो को शिक्षा दूँगा।

है एक मास की अवधि, पूर्ति होगी प्रण की
या तो मेरी गोली का वह शिकार होगा,
अन्यथा आत्म-हत्या ही मेरे लिये मार्ग
असफल होकर यह जीवन मुझे भार होगा।"

यह भगतसिह का प्रण क्या था, मानो उसने
इतिहास महाभारत का ही दुहराया हो,
इतिहास काल-क्रम के अन्तर मे जैसे वह
उलटे क्रम से इस नूतन युग मे आया हो।

था किया जयद्रथ-वध का प्रण तव अर्जुन ने
प्रतिशोध उसे बेटे के त्रध का लेना था,
अव भगतसिह को पितृ-तुल्य लालाजी के
वध का प्रति-उत्तर उसी भाँति ही देना था।

वह घूँट खून का पीकर कैसे रह जाता
उसको तो हत्यारे का शोणित पीना था,
प्रतिशोध अनल से झुलसा जाता था तन-मन
यह तपन बुझाने ही अब उसको जीना था।

सान्डर्स समाया रहता उसकी आँखो में
योजना उसी के वध की रहती थी मन मे,
था क्षीण हो रहा चन्द्र अवधि का क्रम-क्रम से
पर गति आती जाती थी उसके चिन्तन मे।

सांडर्स-वध

क्या एक मास की अवधि बीतते देर लगे
अन्तिम साँसे ले रहा आज यह अन्तिम दिन,
सान्डर्स आज भी जीवित, चिन्तित भगतसिह
है एक मास के दिन बीते प्रतिदिन गिन-गिन ।

यदि आज वधिक का वध न हुआ, होगा अनर्थ
सकल्पी अपने प्राण विसर्जन कर देगा,
सकल्प विफल हो, यह लज्जा होगी असह्य
जीवित रह कर वह नही कभी अपयश लेगा ।

यह लगा प्राण-पण से है इसी योजना मे
आखेट आज उस नर-भक्षी का होना है,
है राष्ट्रीय अपमान निधन लालाजी का
अपयश हत्यारे के शोणित से धोना है ।

पा भगतसिह का आमंत्रण, आये साथी
योजना-बद्ध हो रही मोरचा-बन्दी है,
सकल्प प्रखर कितना इन लोगो के दिल मे
दिख रही हौसले की क्या आज बुलन्दी है ।

अपनी भाषा मे आप भले ही बोले यह
इनने घेरा लाहौर पुलिस के दफ्तर को,
पर सच तो यह है, इने-गिने दीवानो ने—
है घेर लिया जाकर यम दूतो के घर को ।

है एक ओर जन-पथ पर जयगोपाल खड़ा
संकेत उसे देना सान्डर्स आगमन का,
है वहाँ राजगुरु-भगतसिह भी दुबक रहे
अब घोप गूँजने को ही यहाँ दनादन का।

मौजर साधे आजाद खड़े है कुछ हट कर
प्रतिक्रमण हुआ यदि, तो प्रतिरोध करेगे ये,
जो आयेगा, वह होगा गोली का शिकार
आजाय काल भी स्वय न कभी डरेगे ये।

लो, मस्त चाल से अब सान्डर्स चला बाहर
वह फट-फटिया पर चढा, इधर संकेत मिला,
पहचान गये साथी श्री जयगोपाल उसे
वह बढा इधर अब इनका भी रूमाल हिला।

लो हुई धाँय ! यह वार राजगुरु का पहला
सान्डर्स गिरा, उठने का विफल प्रयास किया,
फिर धाँय ! धाँय ! पिस्तौल भगत की गरज उठी
उस नर-भक्षी को उसने भू पर सुला दिया।

फिर धाँय ! धाँय उसका तन छलनी कर डाला
निश्चेष्ट हो गया तडप-तडप गोरा अफसर,
प्रतिशोध-प्रतिज्ञा दोनो की ही पूर्ति हुई
उस अभिमानी का रक्त वह उठा धरती पर।

सुन धाँय-धाँय का स्वर कुछ रक्षक दौड पड़े
कर धाँय-धाँय अब आगे मिस्टर फर्न बढे,
गोलियाँ उगलती थी उनकी पिस्तौल विकट
वे बढे उधर थे भगतसिह जिस ओर खडे।

अब गरज उठी पिस्तौल भगत की उत्तर में
झट लेट भूमि पर, फर्न पैतरा मार गया,
फिर उठा, निशाना ज्यो ही उसने साधा, अब
निकटस्थ राजगुरु ने दिखलाया दाव नया।

झट झपट, हुमक कर उसने कस कर लात जडी
पिस्तौल फर्न की झटका खाकर दूर गिरी,
कस लिया राजगुरु ने उसको निज बाँहो मे
यह लगा फर्न के सर पर भी अब मौत घिरी।

क्रोधाध राजगुरु ने निज सबल भुजाओ मे
भरकर उसको, झट उठा भूमि पर दे मारा,
क्या प्रबल धमाका हुआ, होश खो बैठा वह
अब नये शत्रु ने इन दोनो को ललकारा।

गोलियाँ-गालियां दोनो ही छोडता चला
वह चननसिह था भगतसिह का प्रतिद्वन्दी,
शत्रुता पुरानी फिर उसके दिल मे उभरी
सोचा, अपने प्रतिद्वन्दी को कर लूँ बन्दी।

पर गरज उठा नर-नाहर अब आजाद तडप—
"वापिस जाओ! अन्यथा ढेर हो जाओगे,
इस काल-मुखी की गोली एक बहुत तुमको
तुम सदा-सदा को धरती पर सो जाओगे।"

पर जिसके सर पर मौत घिरे, वह क्यो माने
अब चननसिह दूनी तेजी से लपक पडा,
आजाद धाँय! कर बैठे, गूँजी काल-मुखी
गोली खाकर वह दैत्य नही रह सका खडा।

अर्रा कर वह गिर पडा, ढेर हो गया वही।
वह वीर-कृत्य करके, वीरो का दल खिसका,
अवरोध करे, था किसने माँ का दूध पिया
अवरोध, मौत का करे, भला, साहस किसका ?

अपमान राष्ट्र का धुला शत्रु के शोणित से
था भगतसिह के प्रण का भार हुआ हलका,
था शौर्य प्रबलतम जितना अन्तस्तल मे, वह
सौगुना दीप्त होकर, मुख-मण्डल पर झलका।

विज्ञप्ति विजय की लपटो जैसी लपक पड़ी
हर्षोल्लास छा गया देश के घर-घर मे,
हर छाती चौड़ी हुई और मस्तक ऊँचा,
उन्माद विजय का ध्वनित हुआ सब के स्वर मे।

सर पटक-पटक लाहौर पुलिस थक गई किन्तु
सान्डर्स-काण्ड का कोई वीर न हाथ लगा,
इतना विशाल साम्राज्य लगा वह लुटा-पिटा
वह निष्प्रभ दिखलाई देता था ठगा-ठगा।

था जाल बिछ गया जासूसो का, खोज बिना
चिड़िया का बच्चा भी हो, शहर न छोड़ सके,
इस विजय-पर्व से कोई हर्षित हो न सके
कोई भी अपनी मूँछ न तनिक मरोड़ सके।

फिर भी आँखो मे धूल झोक कर क्रांति-वीर
जासूसो का वह जाल तोड कर चले गये,
रह गई पीटती लीक पुलिस, पर वे भुजंग
वह लीक और केंचुली छोडकर चले गये।

आजाद ठेठ मथुरा के चौवे वन वैठे
था चला तीर्थाटन को वह पडो का दल,
श्रीकृष्ण हरे ! श्रीकृष्ण हरे ! गाते-गाते
वह मण्डल उनका गया सुरक्षित दूर निकल।

था भगतसिह जँच गया राजसी अफसर वन
उस ठाट-वाठ, उस आन-वान का क्या कहना ?
हूबहू अर्दली बना राजगुरु था उसका
उस भगतसिह की अजव शान का क्या कहना ?

दुर्गा भाभी[1] का विकट हौसला तो देखो
अफसर-पत्नी का किया सफलता से अभिनय,
बालक शचीन्द्र को लिया भगत ने गोदी मे
निज लक्ष्य ओर बढ चले सभी होकर निर्भय।

सन्देह पुलिस को हो जाता, गोली चलती
माँ-बालक दोनो के जीवन की खैर न थी,
सर पर मँडराती मौत साथ ले चले सभी
मन बहलाने को की उनने यह सैर न थी।

दुर्गा भाभी का त्याग न भूला जायेगा
वह देश-भक्त के लिए ढाल वनकर निकली,
भगवतीचरण जिसको देहातिन समझे थे
वह क्रान्तिकारिणी अव कराल वनकर निकली।

---

१. दुर्गा भाभी —श्रीमती दुर्गादेवी प्रसिद्ध क्रांतिकारी अमर शहीद भगवतीचरण की पत्नी है। आजकल आप लखनऊ मे रह रही है। भगवतीचरण भगतसिह को बचाने के प्रयास मे रावी के तट पर बम-विस्फोट से शहीद हो गये।

है मान-दण्ड अब तक न बना कोई जग में
जो नाप सके नारी के मन की ऊंचाई,
सब छान लिये दुनिया के सागर मानव ने
पर रही अछूती नारी उर की गहराई।

संकल्प मचलते जब नारी उर मे ज्वलंत
युग करवट लेता है, इतिहास बदलते हैं,
इसके स्नेहिल उर मे ढलते सौ-सौ वसन्त
इसके उर मे मानव के सपने पलते है।

नारी दुर्गा का रूप सदा धरती आई
इस धरती पर जब ऐसा अवसर आया है,
इस समय स्वय दुर्गा नारो बन कर निकली
की भगतसिह के सर पर शीतल छाया है।

चल पडा मेल कलकत्ता को, ले इन सबको
पहले दर्जे के डब्बे मे था किया सफर,
अर्दली राजगुरु भृत्य-वास मे जा बैठा
इस तरह धडल्ले से छोडा लाहौर शहर।

कलकत्ता मे भगवतीचरण आ मिले इन्हे
बोले, "दुर्गा ! कितनी महान् तुम, अब जाना,
तुम भारतीय नारी की हो प्रतिमूर्ति पूर्ण
तुमको पहली ही बार आज है पहचाना।"

झांसी की आग आगरा में

क्या शीत-लहर चल रही आगरा मे भीषण
जम रहा खून, जम रहा नगर का जन-जीवन,
धीरे-धीरे सब चहल-पहल हो गई शान्त
वह अकर्मण्यता का है ओढे पडी कफन।

हो गई रात, तो और कहर बरसा भू पर
किसकी मजाल है जो बाहर आये-जाये,
है शीत-झकोरा एक बहुत झुलसा देने
हिम्मत है अगर किसी मे तो आकर खाये।

पर कमी नही दुनिया मे हिम्मत वालो की
देखो ये है कुछ लोग सामने जो आते,
मुड गये गली मे, रुके एक दरवाजे पर
हो गए खडे गुमसुम है कुछ आहट पाते।

आहट विलीन हो गई, खुला अब दरवाजा
करते प्रवेश, पिस्तौल-नाल सम्मुख आई,
सकेत-शब्द उच्चरित, मिली आगम-अनुमति
प्रहरी ने सब की ओर दृष्टि निज दौडाई।

इस क्रान्ति-सदन का प्रहरी है यह भगतसिह
कुछ नये साथियो को इसने बुलवाया है,
निर्माण करेगे मिल कर ये सब भीषण बम
आमत्रण पर यह दल झासी से आया है।

या कहे, नई भट्टी मिल-जुल कर दहकाने
यह आग आगरा में, झाँसी से आई है,
जब सुना, आगरा बना मुक्ति का यज्ञस्थल
झाँसी ने भी अपनी आहुति पहुँचाई है।

झाँसी, जो सत्तावन की मुक्ति-साधना में
अंग्रेजी शासन पर बिजली-सी अर्राई,
तलवार बुन्देलों की मचली, तो दुश्मन की
वीरता धीरता पत्ते जैसी थर्राई।

जब बनी भवानी मर्दानी रानी लक्ष्मी
तो शत्रु-शीष गाजर-मूली से काटे थे,
युद्धस्थल था खलिहान बन गया लाशों का
मैदान, बाग-वन शत्रु-शवों से पाटे थे।

उस झासी ने फिर भेजे कुछ अपने बेटे
स्वातंत्र्य-समर में फिर आहुतियाँ दो, जाओ!
जो खून बना था लावा सन् सत्तावन में
है वही खून तुम में यह जाकर दिखलाओ।

तो वही खौलता खून लिए निज रग-रग में
आगरा-आग के घर दीवाने आए हैं,
आगरा इन्हें अपनी साँसों का बल देगा
ये अपने अंगारे दहकाने आये हैं।

ये मलकापुरकर—नाम सदाशिव है इनका
कर गरल-पान, देते ये मधु का दान सदा,
कर्मठ सैनिक की ये ज्वलंत भावना लिए
दल करता आया है इन पर अभिमान सदा।

साधना मौन ही इनकी कार्य-प्रणाली है
विश्वास नही है किंचित इन्हें प्रदर्शन मे,
हर एक साँस का सदुपयोग ये करते है
निज देश-धरा के ये सच्चे शुभ-चिन्तन मे।

भगवानदास माहौर क्रान्ति-दर्शी पूरे
ये आग और आँधी दोनो ही साथ लिये,
हो आवश्यक, ये जान झोंक दे, या ले ले
है देश-भक्ति के इनने ऐसे जाम पिये।

इनके उर मे वह कर्म-धर्म की अमर-ज्योति
जिसको न आँच आँधी तूफानो से आए,
करती रहती यह ज्योति सभी के उर ज्योतित
जिस उर को छू दे, भाव विप्लवी दहकाये।

इनसे मिलिए, श्री विश्वनाथ वैशम्पायन
इस धरती के दीवाने, ये मतवाले है,
ये चले, स्वयं तूफान किनारा कर जाये
तूफान कई, ये स्वयं हृदय मे पाले है।

इनकी साँसो मे संकल्पों की वह आँधी
जो छिन्न-भिन्न सब मेघ विकल्पो के करदे,
यदि करे गर्जना इनके सम्मुख कुलिश स्वयं
तो विकट घोष इनका भी, उसका उत्तर दे।

आगए यहाँ, सब भगतसिंह की सुन पुकार
यह क्रान्तिकारियो का अड्डा अब इनका घर,
काँपेगे तब काँपेगे दुश्मन किन्तु अभी
ये स्वयं शीत से काँप रहे है सब थर-थर।

ओढने-बिछाने भला कहाँ से लायें ये
अपनी धुन मे कैसा खाना, कैसा पीना ?
ये बिरवे, जो चट्टानो पर भी हरे रहे
जो सुख-सुविधा मे जिये, भला वह क्या जीना ?

झीनी चादर की पर्तो मे अखबार बिछा
बर्फीली रातो मे ये सुख से सोते है,
शुभ सकल्पो की गर्मी उनके शोणित मे
ये किसी शीत से नही पराजित होते है।

कुछ वे है, जो मीठे सपनो की छाया मे
बैठे-बैठे बाते करते बलिदानो की,
क्या सी ! सी ! करके रात बिता सकते हैं वे
गरमाया करती धूप जिन्हे मुस्कानों की।

जो देश-भक्ति की डीग मारते घर में रह
सच तो यह है, है देश-भक्ति व्यापार उन्हे,
क्या चिन्ता उनको, यदि यह धरती बिक जाये
धरती तो मिट्टी है, सोने से प्यार उन्हे।

क्या मूल्य आँक सकते है वे इन हीरो का
घर-बार छोड जो बने वतन के दीवाने,
है स्वप्न न जिनके बने कँगूरे महलो के
है स्वप्न—नींव के पत्थर हों वे अनजाने।

ह्दय का ज्वार
प्यार की फटकार

अधड उठता तो टिक कर रहता नही कही
जिस ओर गया, वह भारी धूम मचाता है,
चक्ति होते रहना ही उसका जीवन है
झकझोर विश्व-जीवन को वह रख जाता है।

क्यो रहे बैठकर वह भी एक जगह, जिसके
जीवन मे यौवन का भारी अंधड आए?
क्यो नही मचाए धूम सभी मे घूम-घूम?
क्यो नही विश्व-जीवन को वह भी थर्राए?

जब यौवन की सॉसो मे गर्मी होती है
तो तापमान शीतल लगता अगारो का,
यौवन का अधड़ वेगवान होता इतना
वह वेग थाम लेता सागर के ज्वारो का।

जब अपनी पर आता है खून जवानी का
नक्शा रख देता है वह बदल जमाने का,
धडकने पर्वतो के उर की बढने लगती
सकल्प मचलता जब अल्हड़ मर्दाने का।

तो यौवन का उन्मादी अधड भगतसिह
संकल्प प्रखर लेकर क्यो एक जगह टिकता?
बलिदानो की साधना उसे जब थी अभीष्ट
वह समझौते के किसी मोल पर क्यो बिकता?

घूमा करता था चक्र-वात सा वह घर-घर
वह आजादी का अलख जगाया करता था,
उसके पौरुष मे सजीवन था कुछ ऐसा
वह मुर्दो मे जीवन लहराया करता था।

हो कोई भी, वह उसका होकर रह जाता
छू देता वह जिसको अपने अपनेपन से,
मानव तो आखिर हाड़-माँस का पुतला है
पाहन भी मृदु होते उसके सवेदन से।

साहित्य, धर्म या राजनीति के महारथी
लोहा माना करते थे उसके पानी का,
जीवत चेतना का वेजोड महा-दानी
था प्रखर रूप पौरुष का और जवानी का।

आचार्य-प्रवर श्री चतुरसेन[1] से वह उस दिन
भिड़ गया वडे अधिकार-भाव से घर जाकर,
अपनी झोली भी भर ली अपने दल के हित
फिर उलझ पडा, फटकार प्यार की वरसा कर—

---

1. स्व० आचार्य चतुरसेन के शब्दो मे ही पढिए—

'गाहे-वगाहे वह युवक मेरे पास आ जाता है। विचित्र आदमी है। कभी वच्चो की तरह वेसिर-पैर की वाते करता है, कभी खूव गभीर हो जाता है, और कभी गुस्से मे आता है तो छोटे-वडे किसी को भी नही वरकाता। मुँहफट ऐसा कि कभी-किभी मुझे ही फटकार वैठता है। लेकिन मुझ से बातें ऐसे करता है जैसे सगे पिता से। फटकारता है मुझे कायर कहकर। इतने वडे साहित्यिक होकर भी आप कुछ नही करते, यही उसका कहना है।"

—'वातायन' से साभार

"बाबू जी ! जादूगर है आप लेखनी के
फिर क्यो समाज की जडता नही भगाते है ?
बलिदान माँगती है जब अपनी आजादी
क्यो नही लेखनी से बलिदान जगाते है ?

सामर्थ्य सार्थक होता तभी लेखनी का
जब वह समाज के मुर्दो मे जीवन भर दे,
वह जीवन, जो पर्याय बने ज्वाला-गिरि का
विस्फोट, भस्म अन्यायो को जिसका कर दे।

क्यो नही लेखनी धूप उगलती पौरुष की
जब अपनी धरती पर दुश्मन की छाया हो,
क्यो नही लेखनी असि का धर्म करे धारण
जब अन्यायो ने अपना शीष उठाया हो।

साहित्यकार को मधुर स्वप्न क्यो छलते है ?
जब शत्रु मूंग अपनी छाती पर दलता हो,
क्यो नही शर्म से कही डूब मरता वह कवि
जो गीत प्यार के लिखे, देश जब जलता हो।

इसलिये कलम के धनिको ! जादूगरो उठो
कर्तव्य देश-धरती के प्रति तुम पहचानो,
हो छिन्न-भिन्न अभिमानी शीष शत्रुओ के
अपने स्वर से तुम ऐसे गोले सधानो।"

धड़ाधड़ कौन करे

होता है जिसमें गर्म खून, वह नही कभी
अत्याचारी के अन्यायो को सहता है,
फट पडता है उसके अतर का ज्वाला-गिरि
आक्रोश उफन कर लावा जैसा बहता है।

फिर आग और यौवन के धनी क्रान्तिकारी
शासन के काले कानूनो को क्यो सहते?
क्या लाल रक्त मे नही कालिमा लग जाती
जो काला था, यदि वे न उसे काला कहते।

जो युगो-युगो से दलित रहे श्रम के साधक
यह सह्य नही, वे और अधिक पीसे जायें,
यह सह्य नही, शासन के कड़े शिकजे मे
जकड़े रह कर वे सास न सुख की ले पायें।

यदि श्रम-विवाद[1] कानून बन गया, लानत है
रोकेंगे, हम अपनी आवाज उठायेंगे,
यदि शासन ने जन-मत को रौदा तो हम भी
कर धूम-धड़ाका अपनी बात सुनायेंगे।

---

१. श्रम-विवाद=केन्द्रीय असेम्बली मे ट्रेड डिस्प्यूट बिल (Trade Dispute Bill) सदस्यो द्वारा अस्वीकृत हो चुका था पर वायसराय की विशेष आज्ञा से उसे कानून के रूप म स्वीकृत किया जाने वाला था। इस कानून का कुपरिणाम श्रमिको पर पडने वाला था, इसी कारण इसे श्रम-विवाद के नाम से पुकारा गया है।

है श्रमिक, साधना करते जो निर्माणो की
इनकी साँसो मे युग के स्वप्न पला करते,
सच्चे अर्थो मे ये इस युग के भागीरथ
इनके श्रम के बल से साम्राज्य चला करते।

यदि श्रम साधक के हाथ उठे, तो स्वर्ग गढे
वे चाहे तो पाताल फोड पानी ला दे,
वे चाहे मरुथल नन्दन-वन सा लहराये
पसलियाँ पर्वतो की वे चाहे, चर्रा दे।

फिर युग के इन निर्माताओ का शोषण क्यो ?
क्यो इन्हे स्वार्थ की फिर कोई सुरसा हड़पे ?
जो श्रम, गंगा की पावनता मे घुला-मिला
फिर क्यो उसके पुजारियो का जीवन तड़पे ?

यदि अपनी साँसे देकर जीवित रख न सके
यह तो हो, हम इनकी साँसो को बचने दे,
जो माँस शेष है इनके सूखे हाड़ो पर
वह नर-भक्षी गिद्धो को नही खुरचने दे।

इसलिये हमारा निर्णय है, हम जूझेगे
यह श्रम-विवाद, कानून न बनने पायेगा,
अध्यक्ष घोषणा करे, पूर्व ही सभा-भवन
बम गोलो के विस्फोटो से थर्राएगा।

शासन के बहरे कान नही जन-मत सुनते
इसलिए धडाका करके उसे सुनायेगे,
है नही सूझता जन-हित का पथ शासन को
ज्वाला सुलगा कर हम वह पथ दिखलायेगे।

विस्फोट करेगे, किन्तु पलायन नही कभी
पकड़े जाकर, हम स्वय जेल मे जायेंगे,
आवाज हमारी जनता तक न पहुँच पाती
अब न्यायालय द्वारा हम वह पहुँचायेंगे।

देखे दुनियाँ के लोग, आग हम मे कितनी
वे ब्रिटिश राज्य-शासन का नगापन देखे,
सकल्प-साधना देखे वे दीवानो की
वे क्रान्ति-यज्ञ की लपटो का नर्तन देखे।

जायेगे श्री बटुकेश्वर और विजय बाबू
है खून नही, दोनों के तन मे लावा है,
तो सावधान अन्यायी शासन! अब तुझ पर
दो सिंह-पूतो का होने को धावा है।

●

---

१. पूर्व निर्णय के अनुसार क्रान्तिकारियो की केन्द्रीय समिति द्वारा बटुकेश्वर-दत्त और विजयकुमार सिन्हा को केन्द्रीय असेम्बली मे बम फेकने भेजा जाने वाला था। भगतसिंह के अनुरोध से समिति को फिर अपना निर्णय बदलना पड़ा। नए निर्णय के अनुसार भगतसिंह और बटुकेश्वर को बम फेंकने के लिए नियोजित किया गया।

अन्तिम विदाई

आगई विदा-बेला, लो जाता भगतसिह
दुर्गा भाभी उसकी आरती उतार रही,
करुणा, ममता, वेदना, तृषा, आशीष स्नेह
आँखो मे भर-भर कर वह उसे निहार रही।

अवरुद्ध कण्ठ, वाणी-हतप्रभ, भावना प्रखर
क्या कहे किस तरह कहे बात अपने मन की,
घुट रही भावनाओ का धुँआ न लक्षित हो
क्या ही विचित्र गति है यह इनके जीवन की।

जा रहे कहाँ, क्यो जाते, पूछ नही सकती
अनुबध यही, अनुशासन है दृढ यह दल का,
फिर आज विदा के अन्तिम क्षण वह क्या कह कर
भावो से बोझिल मन का भार करे हल्का।

पर जहाँ मुखर-वाणी की गति कु ठित होती
ये नयन, मौन रह कर भी सब कुछ कह जाते,
दो उर, मन की सब बाते कह-सुन लेते है
अवरोध और प्रतिबध धरे ही रह जाते।

दुर्गा भाभी के मौन अचचल दृग कहते
"भैया ! तुम मुझ से अन्तिम विदा लिये जाते,
यह पावन मुख-छवि दर्शन को दुर्लभ होगी
वेदना धरोहर ही तुम मुझे दिये जाते।

मां और बडी मॉ, इनमे से माँ को छोड़ा
जो अपनी सब की मॉ, तुम उसके लिये चले,
मातृत्व निछावर हो सारा, तुम वह सपूत
तुम धवल-कीर्ति के मंथित मक्खन से उजले।

साकार गर्व हो मातृ-भक्ति के तुम महान
तुम हो सदेह उद्घोप संगठित विप्लव के,
वर्चस्व देश के पौरुप के तुम हो ज्वलंत
तुम प्रखर रूप हो दलित भाग्य के उद्भव के।"

उर की यह भापा मूक-दृष्टि की लिपि मे पढ़
था इसी भाँति।अब भगतसिह का भी उत्तर,
वाणी का सब वरदान मिल गया आँखो को
सौ-सौ भावो को लिये दृष्टि हो गई मुखर।

"भाभी क्यो भावुकता का आज प्रदर्शन यह ?
दो विदा, नही शोभित उर का यह आन्दोलन,
कर्तव्य-भावना पर यह कैसा सम्मोहन
शोभित न अकिचन का यह इतना अभिनन्दन।

मॉ नही यहॉ, तुम ही मॉ हो, दो विदा मुझे
स्नेहिल उर का पावन आशीष लुटाओ तुम,
जो दूध पिया है माँ का, उसकी लाज रखूं
माँ बनकर भाभी ! मन मे यही मनाओ तुम।

तब सकट मे था तुमने मेरा साथ दिया
आपत्ति-धर्म मे पति-पत्नी का वह अभिनय,
इस मातृ-भूमि के हित वह करना पड़ा हमे
फिर भी तुम मे था लक्षित सच्चा मातृ-हृदय।

चिड़िया जैसे बच्चे को पखो मे भरले
जब बढ़े नाग कोई, करने उसका भक्षण,
सिहनी दबा दाँतो मे शावक ले जाये
वैसे ही मुझको मिला तुम्हारा संरक्षण।

मातृत्व तुम्हारा मिला, उसी के रक्षण हित
मैं तुम से अन्तिम विदा आज लेकर जाता,
यदि जन्म मनुज का मिले पुन प्रार्थना यही
मैं बनूं पुत्र, तुम मेरी पूजनीय माता।"

मन का यह भाव समझकर मातृ-स्वरूपा ने
मन ही मन अपना संचित स्नेहाशीष दिया,
तब एक भुजा को काट, दूसरी से उसने
निज उष्ण रक्त से भगतसिह का तिलक किया।

आ गई सुशीला दीदी, लिपट गई, बोली—
"भैया! मुझसे भी अन्तिम विदा लिये जाओ,
अनुरोध आज अन्तिम मेरा स्वीकार करो
इस बड़ी बहन पर यह उपकार किये जाओ।

परिधान नया यह पहनो, जीर्ण मुझे देदो
स्मृति-चिह्न तुम्हारा यह हम सब को गर्व बने,
भारत की सब बहिनो का स्नेहाशीष तुम्हे
बलिदान तुम्हारा सब को पावन पर्व बने।

सतरे और रसगुल्ले तुमको प्रिय भैया!
हम दोनो के हाथो, जितनी रुचि हो, खा लो,
फिर कब-कब तुमको खिला-पिला पायेगे हम
अनुरोध हमारा अन्तिम है यह, अपना लो।"

लाढला वीर कुछ कह न सका, मन भारी था
साभार किन्तु उस आग्रह को स्वीकार किया,
गम्भीर मौन श्रद्धा के भाव समर्पित कर
स्नेहानुरोध का उसने भी सत्कार किया।

फिर चरणो की वन्दना नमित नयनो से कर
वह चला गया कर्तव्य और वलि के पथ पर,
सावन की बोझिल बदली से ये नयन इधर
अब बरस पडे झर-झर-झर-झर-झर-झर-झर।

कथा-क्रम

८ अप्रेल १९२९ को सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली के केन्द्रीय सभा-भवन मे बम के दो जोरदार धड़ाके किए और लाल पर्चों की वर्षा की। वे भागे नहीं। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए दोनो ने आत्म-समर्पण कर दिया। न्यायालय मे बयान देते हुए उन्होने क्रान्ति की व्याख्या की।

क्रान्ति चिरजीवी हो

चट्टानी वक्ष तोड़
निर्झर उभरता है
झर-झर-झर
भर-भर-भर
बहता प्रमत्त हो।
क्यो न उद्दण्ड शिला-खण्ड हो प्रचण्ड अति
मर्दन-मद-मान कर
रौद-रौद चलता है।
निर्झर का स्वप्न-भग होता कदापि नही
बनता प्रवाह नदी-नद का अबाध है।
यह प्रवाह
धारा के रूप मे प्रवर्तित हो
जीवन का दान करता है विश्व-जीवन को।

क्रान्ति का प्रगल्भ उत्स
उत्थित प्रमाद-सा
उद्वेलित हो उठे प्रकुप्त अतराल से—
कौन उत्पीडन-दमन रोक पाया उसे ?
कारा का बाँध क्रान्ति-धारा को व्यर्थ है।

क्रान्ति
जो हमारे लिए दिव्य प्रेरणा है एक
और परिचायिका हमारे उष्ण रक्त की—
कैसे रुकेगी वह ।
कैसे चुकेगी वह ?
कैसे झुकेगी अन्याय के प्रहार से ?

सूली के फूलो से
फाँसी के झूलो से
स्वप्न-भंग क्रान्ति के न होते
नही होगे कभी ।
पुण्य के प्रवाह से
शेरो की राह से
संकल्पी चाह से
फलेगे और फूलेगे ।
क्रान्ति-पथ हमने चुना है जान-बूझ कर
इसे छोड़ देना कल्पना का स्वप्न मात्र है ।
प्राण पर तुली हुई
खून मे घुली हुई
क्रान्ति है हमारे लिये जीवन की साँस-सी ।

पूछा न्याय-मन्दिर ने
हम से
है क्रान्ति क्या ?
क्रान्ति
भावनाओ का एक उन्माद है ।

यह उन्माद
उन्माद ध्वसकारी नही
मडन की क्रोड मे लिये है कर्मशीलता ।
गृह
परिवार
या समाज की विषमताये
स्वार्थ-लिप्साये जब विद्रपित होती है—
पीड़ित
प्रताडित
दलित भावनाएँ तब
उत्थित हो जूझती है
यही जन-क्रान्ति है ।

क्रान्ति
यह विरोध प्रतिशोध व्यक्तिगत नही
धर्म नही यह पिस्तौल और वम का ।
रूप खून खच्चर का क्रान्ति है कदापि नही
लोक चेतना की यह बुलन्द आवाज है।
प्रकृति और मानव के जीवन का धर्म क्रान्ति
क्रान्ति उपचार एक
सत्य के अजीर्ण का ?

मोह
मद
मत्सर
असत्य स्वार्थ-लिप्सादि
अति परिमाण मे सुपाच्य नही सत्य को।

विकृत हो सत्य स्वर्ण-खोट के समान है
क्रान्ति उसे शोधक है
तीव्र तेजाव-सा ।
ज्वाला मे तपा-गला
विकृति की खोट जला
सत्य को निखार क्रान्ति कुन्दन वनाती है।

क्रान्ति
तीव्र आंधी जो उठ कर उडाती,
समाज राजनीति-जन्य थोथे कुविचारो को।
क्रान्ति के झकोरे उस धूल को उड़ाते है
जमती जो शनैः शनै.
न्याय कानून पर।

क्रान्ति
उद्घोषणा है समता समानता की
क्रान्ति
चिर शत्रु यह वर्ग और भेद की।

क्रान्ति को न सह्य इंसान हैवान बने
ऐड़ी पर चोटी का तीव्र आक्रोश हो।
क्रान्ति
विध्वंसक पैशाचिक व्यवस्था की
जिनसे मनुष्य है मनुष्य को निचोड़ता।
क्रान्ति
अधिकार-वाद के विरुद्ध नारा है
करता जो शख-नाद व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का।

क्रान्ति एक दर्पण है जिसमे विकृति भी
आकृति का भव्य रूप धारण कर दिखती है।
क्रान्ति पोछती है लेख मानव की कुत्सा के
लिखती सु-अंक विश्व-जीवन के भाल पर।

क्रान्ति
यज्ञ-शाला की वेदी पवित्र
जहाँ
स्वाहा के सरगम मे जीवन का होम है
क्रान्ति
मस्तको के दानियो का पुण्य-पर्व एक
जीवन है क्रान्ति
क्रान्ति यौवन की धूप है।

और क्रान्ति-देवी के चरणों के वन्दन को
प्राणो के फूलो का करके समर्पण
वाट जोहते है उत्कण्ठा से उस क्षण की
साधना को सिद्धि का मिलेगा वरदान जब
दिव्य ज्योति मे विलीन
जीवन की ज्योति कर
हम
पर्वानो के प्रण को निभायेगे।
आत्म-सगीत के स्वरो की गूँज होगी यही—
"मुक्त राष्ट्र हो अमर!"
"क्रान्ति चिर-जीवी हो!"

व्यापक धर-पकड़, और ऐतिहासिक अनशन

वहरे कानो ने सचमुच कुछ भी सुना नही
वह न्याय-तुला शासन की फिर डगमगा गई,
आजन्म कैद, दोनो सिंहो को दण्ड मिला
बलिदान-भावना और अधिक जगमगा गई।

पर यह तो केवल पटाक्षेप था नाटक का
था शेष अभी होने को और करुण अभिनय,
साण्डर्स काण्ड के सूत्र हाथ लग वैठे कुछ
था भगतसिंह पर हावी अव फिर न्यायालय।

सुखदेव वनाते वम थे पकड़े गये, और
साडर्स-काण्ड के वे भी अव अभियुक्त वने,
शासन की आँखो मे डोरे थे लाल-लाल
दिखते थे उसके तेवर विलकुल तने-तने।

जयदेव और शिव वर्मा भी वच नही सके
डाक्टर प्रसाद,[1] साथी यतीन्द्र[2] धर लिये गये,
साथी श्री कुन्दनलाल, राजगुरु, अजय,[3] विजय[4]
थे सव ही के सव अव वन्दी कर लिये गये।

---

१. डॉक्टर गयाप्रसाद—ये सहारनपुर वम फैक्टरी मे पकडे गये थे। शिव वर्मा की गिरफ्तारी भी वही हुई थी।
२. यतीन्द्रनाथ दास।
३. अजय घोप।
४. विजयकुमार सिन्हा।

इस गर्म खून पर अब कानून हुआ हावी
हावी थी उन पर अब विधान की धाराएँ,
आती न नींद थी शासन को जिनके कारण
उन सब की नींद चुराती थी अब काराएँ।

बालू-मिट्टी-संयुक्त रोटियाँ खा लेते
पर असम्मान सहने के वे न रहे आदी,
शासन के पड़ो को सुधारते थे बाहर
वे बने यहाँ अब जेलो के सुधारवादी।

हम मानव है, फिर यह व्यवहार न हो पशुवत्
हम नही लुटेरे, चोर, उचक्के, डाकू है,
हम अपराधी है नही, युद्ध के बन्दी है
हम शासन से जूझे है, वीर लड़ाकू है।

इसलिये प्राप्त हो सुविधाएँ हम को वैसी
यह भेद-भाव, पशुवत् व्यवहार न हमे सहन,
है अस्त्र नही, जो शासन का सामना करे
अब अस्त्र हमारा यहाँ एक ही है—अनशन।

अनशन ? हाँ सचमुच अनशन अपनाया सब ने
बिलकुल ही उनने छोड दिया खाना-पीना,
जब तक जीवन, सम्मान नही जाने पाये
अपमान सहन कर जिये, भला वह क्या जीना।

पर शासन तो था तुला उन्हे जीवित रखने
जीवित रख कर तिल-तिल कर उन्हे सुखाने को,
था तुला हुआ, धीरे-धीरे उन लोगो को
वह मृत्यु और जीवन के बीच झुलाने को।

इसलिए एक पर आठ-आठ मुस्तडे चढ
बल से, नलियो द्वारा रस उन्हे पिलाते थे,
था उन्हे मारना, धीरे-धीरे रगड-रगड़
इसलिये दूत यम के ये, उन्हे जिलाते थे।

बेडियो और हथकडियों मे ही न्यायालय
ले जाते इन भूखे-प्यासे कृष-गातो को,
देवता न्याय-मन्दिर के पिघले नही कभी
लख उनके तन पर हुए क्रूर आघातो को।

थे सिह आन पर दृढ, झुकने तैयार न थे
सम्मान-सुरक्षा बनी धरोहर जीवन की,
घिस रही रेख थी जीवन की धीरे-धीरे
बढ रही रेख थी पर उन सब के अनशन की।

यतीन्द्रनाथ दास का आत्म-बलिदान

चुक गया स्नेह, रह गई अकेली वाती
अब बुझने को ही दिखती लौ जीवन की,
अब लक्ष्य-बिंदु तक आ पहुँची रेखाये
साथी यतीन्द्र के जीवन की अनशन की।

घटती जाती है घड़ियाँ, पल घटते है
हो गई साँस की गति भी अति प्रश्लथ है,
धड़कने हृदय की भी अब डूब रही है
अवरुद्ध हो गया नाडी का भी पथ है।

यह कौन कह उठा —"परमेश्वर यदि तुम हो
कुछ तनिक और इस साथी को जीवन दो,
कर दो सतेज फिर इसकी श्लथ साँसो को
कुछ और धड़कने, नाडी को थिरकन दो।"

ये शब्द सुने, सचमुच ही जीवन लौटा
बुझने वाली लौ अकस्मात फिर भभकी,
जो आग रह गई थी अंतर मे बाकी
पूरी प्रचण्डता से वह अब फिर धधकी।

"क्यो दुआ माँगते हो तुम परमेश्वर मे ?
स्वीकार न होगी मुझे भीख जीवन की,
जग मे केवल परमेश्वर कर्म हमारे
हम मे ही रहती शक्ति सृष्टि-नियमन की।

इसलिये मुझे जाने दो, विदा करो तुम
मेरे जीवन के लिये न दुआ मनाओ,
वलिदान माँगती है भारत की धरती
जीवन-बलि देकर मुक्ति-पर्व घर लाओ।"

यह कहते-कहते मुक्ति-पंथ का पंछी
उड़ गया तोड़ कर पिंजड़ा अपने तन का,
आहुत जीवन को वरण कर लिया उसने
जीवित रहस्य देकर जीवन-दर्शन का।

हम भी इस शव के अन्तिम दर्शन कर ले
जनता भी देखो कैसी उमड़ी आई,
यह वीर आज कधो पर चढ जायेगा
फूलों से यह अर्थी जा रही सजाई।

आँखे है जो झर-झर-झर वरस रही है
है प्राण विकल, जो फूट-फूट कर रोते,
भारत-माता का लाल लुट गया देखो
नर-नारी, छाती कूट-कूट कर रोते।

जा रहा लाढला यह सपूत माता का
जा रहा वीर यह, इस धरती का वेटा,
इस धरती का सम्मान उठाया जिसने
जा रहा वही कधो पर लेटा-लेटा।

देखो, कैसे ये वच्चे विलख रहे है
ये युवक गिर रहे है पछाड़ खा-खाकर,
माताओ की यह दशा न देखी जाती
क्या उमड़ रहा है दूध, फूल वरसा कर।

बहनो ने अपना प्यारा भैया खोया
है कौन ? उन्हे जो धीरज दे, समझाये,
करुणा ही जब रोदन करने बैठी हो
क्यो पाहन का भी हृदय न भर-भर आये !

जो सुनता है, सब छोड़ साथ चल देता
यह देश-भक्त की अर्थी है जो जाती,
कोई न हाथ, जो नही फूल बरसाता
कोई न आँख, जो नही अश्रु बरसाती।

मत कहो, जा रहा है यह शव कलकत्ता
मत कहो, उसे देता लाहौर विदाई,
बंगाले की खाड़ी के घर मातम है
यह देख पंच-नद की छाती भर आई।

जा रही चीखती रेल, वीर का शव ले
व्याकुलता से छाती धड़-धड़ा रही है,
सिसकियाँ छोडती, वह कैसे क्या बोले
वाणी कुंठित जिह्वा लड़खडा रही है।

दिल्ली आई, लो यह जन-सागर उमडा
चल-समारोह यह शव का गया सजाया,
छज्जे अटारियो से फूलो की वर्षा
सब ही ने श्रद्धा-स्नेह-भाव बरसाया।

ये स्निग्ध-स्वच्छ पथ, बरसा यहाँ न पानी
फिर क्यो इन पर कीचड़ पड़ रहा दिखाई;
यह कीचड़ जन-पद से कुचले फूलो का
जनता ने इतनी पुष्प-राशि बरसाई।

अब पुन यात्रा, नगर, कानपुर आया
जन-गगा की क्या बाढ भयकर आई,
है परिधि दृष्टि की जितनी, उस सीमा तक
नर-मुण्ड पड रहे केवल हमे दिखाई।

छटपटा रही है गाडी चल देने को
पर लोग न चलने देते उसको गज भर,
शव के दर्शन हो सुलभ, तभी जा सकती
ये लेटे कितने लोग रेल के पथ पर।

इस देश-भक्त के अन्तिम दर्शन करता
दिखलाई देता हमको यहाँ जवाहर,
गभीर, मौन, निस्सीम वेदना उर की
चित्रित दिखती है जन-नायक के मुख पर।

व्यक्तित्व कौन यह अन्य एक तेजस्वी
ये कोई पडित-प्रवर दिखाई देते,
यह माला-छापा-तिलक सुशोभित आनन
शव-दर्शन कर, ये दीर्घ आह भर लेते।

पहचान गये नेहरू, इन पडित जी को
आगये अरे ! ये स्वय चन्द्रशेखर है,
आजाद उपस्थित है अन्तिम-दर्शन को
कितने दिलेर, कितने नि शक-निडर है।

क्या लम्बी-चौडी पगड़ी बाँध रखी है
उसके नीचे रख लिया छिपाकर बम है,
पिस्तौल, बगल-बण्डी के नीचे शोभित
आगये धडल्ले से, साहस क्या कम है।

मंत्रोच्चार कर रहे शान्ति के हित ये
रक्षक-दल तत्पर होकर भीड हटाता,
क्या पता पुलिस को, वह पथ जिसे बनाती
उसका शिकार ही उसके आगे जाता।

सर फोड रही वर्षो से पुलिस पकड़ने
पर ये है जो उसको चकमा दे जाते,
ये पुलिस अफसरो से जा हाथ मिलाते
पर साफ निकल जाते है, हाथ न आते।

सैकडो पुलिस वाले आगे-पीछे है
पर देश-भक्त के करते ये शव-दर्शन,
कैसे सभव है, मन मे इच्छा जागे
फिर रोक सके इनका पथ कोई बन्धन।

•••

इस तरह सभी की श्रद्धाजलियाँ लेकर
प्रारम्भ यात्रा का अब फिर से क्रम है,
अवरुद्ध हुआ हर कण्ठ हिचकियो से है
हर आँख आज दिखलाई देती नम है।

यह कलकत्ता बन गया शोक का सागर
सागर अपनी मर्यादा छोड रहा है,
है असहनीय पीडा इसके अन्तर मे
तट से टकरा कर यह सर फोड रहा है।

इस तरह देश के इस दीपक ने बुझकर
बुझते अरमानो मे भी ज्योति जगादी,
यह ज्योति जगी, तो मची धूम कुछ ऐसी
उसने बलिदानो की ज्वाला सुलगादी।

जिन-जिन जेलो मे क्रान्ति-वीर थे, सब ने
प्रारम्भ कर दिया फिर से क्रम अनशन का,
मच गई खलबली दुनिया भर में भारी
हिल गया तख्त अत्याचारी शासन का।

था भगतसिह जिसने सोलह हफ्ते का
अनशन करके सारे जग को चकराया,
हो गई प्राप्त सुख-सुविधाएँ जेलो को
शासन का सर उसने इस तरह झुकाया।

धरती की चिता
और
आसमान का कफन

उपवन के सुमनो ने सम्मान सदा पाया
किसने जाना कब कौन कहाँ वन-फूल खिला,
किसने जाना कब महका, कब वह मुर्झाया
कब बिखर धूल मे वह अनदेखा फूल मिला।

अन-बूझे रहते सदा नीव के पत्थर है
अपनी छाती पर बोझ रखे प्रासादो का,
अभिनन्दन करते प्राप्त कँगूरो के पत्थर
तोरण वन्दनवारो के गर्व-प्रमादो का।

इस भारत-उपवन मे कितने वन-फूल खिले
वे अनदेखे—अनजाने ही चुपचाप झडे,
माताओ के लाडले लाल जाने कितने
आजादी की मंजिल के नीचे दबे पडे।

बन रहा नीव का पत्थर ऐसा ही, देखो
यह एक लाडला लाल विश्व से अनदेखा,
शायद कृतघ्न इतिहास भूल जाये इसकी
अंकित न करे इसके उत्सर्गों का लेखा।

देखो, यह इसकी लाश पडी रावी-तट पर
लोहू-लुहान, जर्जरित, उपेक्षित, क्षत-विक्षत,
उड गये हाथ, आँते सब बाहर निकल पडी
आहत होकर हो गई देह कैसी विकृत।

इस निर्जन मे, यह देश-भक्त की लाश पड़ी
हो गया विदा यह क्रान्ति-वीर भगवतीचरण,
कर जीवन का उत्सर्ग देश की धरती को
कर लिया वीर ने आज मृत्यु का स्वय वरण।

साम्राज्यवाद पर गिरने को जो बना, किन्तु
फट गया भूल से इसके हाथो मे वह बम,
आक्रोश-वलित विस्फोट हुआ उसका ऐसा
जीवन की बलि के साथ हुआ उसका उपशम।

वह लाल जिसे जाने कितने अरमानो से,
माॅ की पागल ममता ने दुलराया होगा,
ठण्डी रातो मे गरम धडकनो पर रख कर
जिसका माथा साॅसो से गरमाया होगा।

जिस आॅखो के तारे को चन्दा कह-कह कर
माँ की आशाओ का सूरज चमका होगा,
लख जिसकी भोली दुग्ध-धवल मुस्कानो को
माॅ का आनन दर्पण जैसा दमका होगा।

यह लाश पड़ी उसकी ही क्षत-विक्षत होकर
रावी के इस सुनसान और निर्जन तट पर,
सिन्दूर लुट गया उस सुहागिनी का, जिसकी
धडकने विहँस उठती थी इसकी आहट पर।

दुर्भाग्य और इससे बढ कर क्या हो सकता
हो गये अरे! काले मुँह उसके सपनो के,
वह कधो पर चढ कर दो गज भी जा न सका
पा नही सका वह दो आॅसू भी अपनो के।

चुपचाप साथियो ने दी उसको जल-समाधि
थे विवश, मृत्यु का करते कैसे विज्ञापन,
हो जाता भडाफोड न क्रान्ति-योजना का ?
इसलिए आँसुओ को पीकर की मृत्यु सहन।

इस भाँति लाल वह भारत-माँ का विदा हुआ
भगवतीचरण वन ज्योति-किरण वलिदानो की,
झड गया महकता एक फूल वह अनदेखा
वलि देकर, जीवन के मुकुलित अरमानो की।

मरते-मरते भी यही भाव प्रज्ज्वलित रहा—
"अभियान मुक्ति का किसी मूल्य पर रुके नही,
वलिदान बडे से वडा लगे हमको नगण्य
अभिमान हमारा किसी दमन से झुके नही।

लाहौर जेल गूँजे बम के विस्फोटो से
वन सके जिस तरह, भगतसिह को मुक्त करो,
धरती की आजादी ही सबका लक्ष्य रहे
आजादी के प्राणो मे अपना खून भरो।"

दो-दो भगतसिंह

लाहौर जेल के लौह-सीखचो! बोलो तो
क्या हुआ, आज जो मुझको नीद नही आती ?
क्यो आज करवटे बदल रहा मै पड़ा-पडा ?
क्यो आज विवशता कोई मुझको तड़पाती ?

यह नही कि मुझको आज कष्ट हो रहा यहाँ
यह नही कि मुझको अटपट लगता भूमि-शयन,
यह नही कि मै इस जीवन से हूँ ऊब गया
यह नही कि मुझको आज भार लगता जीवन ।

क्यो नही अरे! ये लौह-सीखचे बोल रहे ?
क्यो नही प्रश्न का देते ये कुछ भी उत्तर ?
इस काल-कोठरी का यह काला अंधकार
क्यो हलचल-सी है मचा रहा मन के अन्दर ?

क्यो हिलता-डुलता-सा दिखता यह अधकार ?
दिख रही मुझे इस तम मे भी किसकी आकृति ?
यह शक्ल कही देखी-सी दिखती है मुझको
पर लक्षित है इस मुख पर यह कैसी विकृति ?

रे! यह तो है विद्रूप स्वय मेरा अपना
तो क्या यह आकृति मेरा ही अन्तर्मन है ?
क्या यह मेरी जिज्ञासा का उत्तर देगा ?
क्या इसीलिए इसके अधरो पर थिरकन है ?

"हाँ, इसीलिए मेरे अधरो पर थिरकन है
तुम क्या हो, तुमको यही बताने आया हूँ,
तुम भगतसिह हो, भगतसिह का मन हूँ मै
मैं शक्ल तुम्हारी तुम्हे दिखाने आया हूँ।

तुम इतने खुश हो, फूले नही समाते जो
फिर बोलो, तुम को नीद कहाँ से आयेगी ?
तुम खुश हो, तुम कल जेल तोड़ कर भागोगे
अपनी ही टोली आकर तुम्हे छुडायेगी।"

"हाँ! हाँ! कल मै यह जेल तोड़ कर भागूँगा
तो क्या यह कोई पाप-कर्म कहलायेगा ?
योजना हमारे दल की है यह गोपनीय
वह धूम-धडाका कर मुझको ले जायेगा।

यह शासन, जो बदनाम दमन के लिए बहुत
यह कृत्य तमाचा होगा अब उसके मुँह पर,
हम मुट्ठी भर, यह शासन पर्वत-सा विशाल
यह शक्ति-परीक्षण का होगा अच्छा अवसर।"

"क्यो भगतसिह ! अपने को ही धोखा देते ?
यह कहो, सुनहली दुनियाँ तुम्हे बुलाती है,
यह जेल, काटने को फिरती है अब तुमको
बाहर की रगीनी तुमको ललचाती है।

क्या देश-भक्ति का ज्वार हो गया वह ठण्डा ?
बलिदान-भावना किस दुनियाँ मे समा गई ?
सो गई तमन्ना सर देने की कहो कहाँ ?
जिन्दा रहने की चाह तुम्हे वह थमा गई।"

"आरोप नही, यह तो अन्याय सरासर है
जग का सम्मोहन नही मुझे आकर्षण है,
बाहर रहकर मै अधिक काम कर सकता हूँ
योजना हमारी अब भीषण संघर्षण है।

अब यहाँ पड़े रह कर अपना सर देना क्या
अब यही तमन्ना है, शासन का सर कुचलूँ,
संगठित शक्ति का कर विराट आयोजन मैं
अन्यायी शासन का पूरा नक्शा बदलूँ।"

"तुम बच्चो को इन बातो से बहका सकते
पर भूल रहे क्यो भगतसिह ! मै तो मन हूँ,
फिर मुझे भुलावा तुम कैसे दे सकते हो ?
मैं साथ तुम्हारे रहता आया हर क्षण हूँ।

कुछ भी कह-सुन कर तुम अपने को समझालो
तुम किन्तु भगोड़े ही आखिर कहलाओगे,
वीरता नही, यह होगा वह कुत्सित कलंक
तुम नही खून से भी जिसको धो पाओगे।

दिल्ली असेम्बली का वह बम विस्फोट-काण्ड
फिर आत्म-समर्पण वहाँ तुम्हारा कर देना,
भारत के सोए गौरव का वह उत्थापन
बलिदान-भावना वह लोगो मे भर देना।

पुँछ जायेगा, धुल जायेगा वह यश बिलकुल
यह भी संभव है, यह दुनिया तुम पर थूके,
घर और घाट दोनो के नही रहोगे तुम
जो मिला तुम्हे अवसर, यदि तुम उससे चूके।"

"यह तर्क मान्य, पर क्या होगा उन मित्रो का
जो तैयारी से मुझे छुडाने आयेगे,
सकेत 'कार्य' का दिया न यदि मैंने उनको
वे क्या विचार मेरे प्रति लेकर जायेगे ?

किस तरह दिखाऊँगा मै उनको अपना मुँह ?
विश्वास-घात दल के प्रति क्या न पाप होगा ?
क्या कायर की सज्ञा न मुझे वे देगे सब ?
क्या मुझको अपना जीवन नही शाप होगा ?

"हाँ, जीवन तुम्हे शाप होगा, यदि सचमुच तुम
विश्वास-घात अपने प्रति ही अपनाओगे,
इससे बढकर क्या और पाप होगा, यदि तुम
अपने को ही धोखा देकर बच जाओगे।

जीवित रह कर तुम नही काम वह कर सकते
जो काम तुम्हारी मृत्यु यहाँ कर जायेगी,
जीवित रह कर दो-चार मार लोगे दुश्मन
पर मृत्यु समूचे शासन को थर्रायेगी।

आत्मोत्सर्ग कर सके अगर तुम, तो सुनलो !
यह देश सो रहा जो, तुम उसे जगा दोगे,
तुम अमर रह सकोगे सदियो की साँसो मे
तुम मर कर सचमुच अपनी मृत्यु भगा दोगे।

तुमको सुभाप की मान्य योजना हुई नही
नेहरू-द्वय का प्रस्ताव सदा ही ठुकराया,
तुमको गणेशशकर भी विचलित कर न सके
था महामना ने तुमको कितना समझाया।

यदि भाग गये, उन सबको क्या उत्तर दोगे ?
सिद्धान्त कौन सा फिर उनको समझाओगे ?
जिस भारत मे तुम गाँधी जैसे ही पुजते
क्या नही भगोडे तुम उनसे कहलाओगे ?

इसलिए, मार्ग जो अपनाया है, डटे रहो
आत्मोत्सर्ग ही सच्ची मुक्ति तुम्हारी है,
वह मृत्यु नही जो तुमको लेने आएगी
अमरत्व प्राप्त करने की ही तैयारी है।"

"मेरे ही मन ! कितना कृतज्ञ हूँ मैं तेरा
तूने फिर मुझको आज मार्ग दिखलाया है,
इस काल-कोठरी के तमसावृत घेरे मे
कर्तव्य-सूर्य बन कर तू सम्मुख आया है।

सकल्प यही फिर मैं अपना दुहराता हूँ
जीवन-बलि से ही मुझको देश जगाना है,
याचना मुक्ति की, पाप बने मुझको भीषण
आत्मोत्सर्ग की निधि ही मुझे कमाना है।

यह मौत मुझे जो मिले, मुक्ति हो धरती की
दुर्भाग्य-निशा को चीर, नई दिन-मणि ला दे,
यह मौत, बने जीवन हर भारत-वासी को
इस धरती पर रह सौ-सौ मंगल बरसा दे।
● ● ●

तो प्राण-दण्ड ही था निर्णय न्यायालय का
तैयार किये शासन ने फाँसी के झूले,
सुखदेव, राजगुरु, भगतसिह सुन निर्णय यह
हर्षोन्माद से दिखते थे फूले-फूले।
●

आजाद की रक्त-सरस्वती

वन्दित-अभिनन्दित मोक्ष-प्रदाता तीर्थराज
वह पुण्य-त्रिवेणी का सगम पावन प्रयाग,
गंगा यमुना का मिलन कलुष के लिए काल
वह भक्ति और श्रद्धा का चिरजीवी सुहाग।

जिज्ञासु भक्त के लिए सहज उत्कण्ठा यह
क्यो सरस्वती के प्राप्य नही पावन दर्शन ?
फिर इसे त्रिवेणी का गौरव किस तरह प्राप्त
जव दर्शित दो धाराओ का ही मधुर मिलन।

इस जिज्ञासा की शान्ति इस तरह होती है
उत्तर मिलता है धर्म-धुरीणो के द्वारा—
अन्तर-प्रवाह है सरस्वती का युग-युग से
पुण्यो के फल से ही दर्शित है वह धारा।

सच है, प्रयाग के पुण्यो का था उदय हुआ
जब सरस्वती के पाए लोगो ने दर्शन,
बहु-धाराओ मे प्रकट हुई वह सहसा ही
अब चिर-विश्रुत चिर-वन्दनीय है वह उपवन।

उपवन प्रयाग का, जहाँ चन्द्रशेखर का तन
था सरस्वती का बना सहज पावन उद्गम,
जव वक्ष और मस्तक से शोणित उबल पड़ा
तो तीर्थ-राज वन गया त्रिवेणी का सगम।

घिर गया वीर गोरी सेनाओ के द्वारा
आजाद, किन्तु मरते दम तक आजाद रहा,
आतंकित करता रहा सदा वह रिपु दल को
वन्दी होने का नही कभी अपमान सहा।

जव छल से उसको घेर लिया सेना ने, तो
दुर्द्धर्प वीर ने क्या भीषण सग्राम किया,
वह वीर अकेला, सौ-सौ सैनिक घात लगे
उस प्रलय वीर ने पर उन सव को हिला दिया।

मिल गई धूल मे शेखी गोरे अफसर की
ले ओट विटप की, झाँका तनिक नाटवावर,
गोली अचूक ले उडी भुजा पल मे उसकी
गिर गया विदेशी वही भूमि पर अर्राकर।

लुक-छिप कर लेकर आड वढे फिर कुछ सैनिक
गर्जना सिह की पडी कान, वे सव दुवके,
विश्वेश्वरसिह झाडी के झुरमुट मे छिप कर
ले ओट तनिक आगे सरका चुपके-चुपके।

पिस्तौल दन्न से गरज उठी, गोली छूटी
जा तोडा उसने पल मे घाती का जवडा,
झाड़ी की लेकर ओट उभकना वह उसका
जवडे की कीमत पर था महँगा वहुत पडा।

पिस्तौल वीर की रही गरजती वढ-वढ कर
वन्दूके रिपु की रही चीखती उत्तर मे,
ललकार रहा था क्रुद्ध-वीर वह रण-थल मे
सुन शत्रु रहे थे प्रलय-घोप उसके स्वर मे।

वह काल-मुखी पिस्तौल भयकर थी सचमुच
कोई भी उसकी गई नही गोली खाली,
रिपु ने ली जिसकी आड़, अरे ! उस तरु की क्या
साम्राज्य-वाद की छाती छलनी कर डाली।

सब इधर-उधर से रहे झाँकते बगले ही
कोई माई का लाल नही सम्मुख आया,
जो दिखा तनिक, वह अग-भंग निज कर बैठा
गर्जना सिह की सुन जम्बुक दल थर्राया।

जाने कितनी गोलियाँ देह मे समा गई
वह डटा रहा फिर भी रण-बका अलबेला,
बौछार गोलियाँ की खाता, छोडता रहा
जीवन रहते वह खेल मौत का खुल-खेला।

दुर्भाग्य ! किन्तु चुक गई गोलियाँ अब उसकी
रह गई शेष गोली उस पर केवल अन्तिम,
वह स्वय दाग ली उसने अपने मस्तक पर
बह उठी वीर के मस्तक से धारा रक्तिम।

वह जूझ गया नरसिह वहाँ लड़ते-लडते
धरती-माता की गोदी मे वह समा गया,
बेजोड़ वीरता का रक्तिम इतिहास अमर
जगती के हाथो मे वह अपना थमा गया।

वे प्रखर रक्त-धाराएँ जो छूटी उसकी
सचमुच ही उस दिन सरस्वती के दर्शन थे,
दर्शन देकर वह सरस्वती फिर थी विलीन
उस शुभ-दर्शन से सब ही के पावन मन थे।

गंगा-यमुना की धार त्रिवेणी है सचमुच
है देश-भक्त के शोणित का उसमे संगम,
आत्मोत्सर्ग यह युग-युग का पावन प्रकाश
बलिदान रहेगा यह सदियों तक हृदयगम।

उठ गया लाल अपनी माता का वह उस दिन
उठ गया क्रान्ति-सेना का वह दृढ़ सेनानी,
उठ गया वीर वह सिंह-गर्जना सुन जिसकी
दुश्मन के तन का शोणित बनता था पानी।

जब भगतसिंह ने सुना, दीर्घ निश्वास छोड़
बोला—"भैया ! तुम सचमुच ही आजाद रहे,
तुम मुझ से बाजी मार ले गये सेनानी !
पर शीघ्र मिलूंगा तुम से, यह भी याद रहे।

अन्तिम सन्देश

प्रिय साथियो! अभिनन्दन आज अन्तिम बार तुम्हारा,
जन्म-जन्म तक सबल होगा, पावन प्यार तुम्हारा।
है अन्तिम सन्देश—अमर हो यह सघर्ष हमारा,
पौरुष के पथ पर जाग्रत हो भारतवर्ष हमारा,

मुक्त देश ही जग मे जीवित रहने का अधिकारी,
आज देश की मुक्ति-साधना पावन सिद्धि हमारी।
वरण करो इस महा-सिद्धि को सघर्षों के द्वारा,
इन्कलाब ही रहे हमारा युगो-युगो तक नारा।

इन्कलाब की आग रहे जीवित प्राणो के हवि से,
माँग रहा युग नया सवेरा आज शौर्य के रवि से।
जीवन की बलि माँग रही है धरती की आजादी,
देखे कौन डटा रहता है लिये प्राण उन्मादी।

यह साम्राज्य-वाद का दानव जब तक हार न माने,
डटे रहे बलिपंथी बन कर धरती के दीवाने।
शोणित के पथ पर चल कर जो आजादी आयेगी
अपना मूल्य स्वय वह हमको आकर समझायेगी।

अत सधि की मृग-मरीचिका हमे नही भटकाये,
जलते अगारो पर कोई राख न जमने पाये।
अपमानो के घूँट हमारे लिये जहर बन जाये,
भारत के संकल्प शत्रु के लिये कहर बन जाये।

रक्त हमारा, इस धरती की फसलो मे लहराये,
रक्त हमारा, सुमन-दलो मे सौरभ वन मुस्काये।
रक्त हमारा वने हमारे वलिदानो का दर्पण,
पितृ-शहीदो का हो अपने उष्ण रक्त से तर्पण।

जाते-जाते एक वात यह भी तुम से कह जाये।
अपनो से ही क्यो रहस्य कुछ विना कहे रह जाये।
मुक्ति-वरण का नही राज्य के मद मे परिवर्तन हो,
वलिदानो का मूल्य माँगने का न कभी प्रचलन हो,

जिस दिन मन मे सत्ता का मद और अह उपजेगा,
उस दिन अह तुम्हारा ही यह तुमको ले डूवेगा।
जो गोलियाँ दाग कर तुम यह सत्ता चले मिटाने,
उन्ही गोलियों के वन सकते, तुम भी कभी निशाने।

जो कहना था, तुम से कह कर विदा हुए जाते है,
मन चाही मिल रही मौत, हम तीनो मदमाते है।
मरा समझ कर हमे, कभी तुम आँसू नही वहाना,
हमे याद कर वलिदानो की सुखद प्रेरणा पाना।

●

मेरा लाल मिले मुझको धरती की खुशहाली में

"क्या कहते हो, बेटे का मैं मुख न देख पाऊँगी ?
क्या उसका स्वर सुनने से मै बचित रह जाऊँगी ?
क्या मेरा बच्चा फॉसी के फन्दे पर झूलेगा ?
हत्यारो का वक्ष उसे खाकर ही क्या फूलेगा ?

क्या शासन का केतु अरे ! चन्दा को खा जायेगा ?
मेरे भाग्य-गगन पर क्या अँधियारा छा जायेगा ?
जीवित रहूँ देखने यह सब, निष्ठुर अरे विधाता !
उसके पहले मुझको ही क्यो तू है नहीं उठाता ?

जिसे खिलाया था गोदी मे मैने अरमानो से
जिसका माथा चूमा करती थी मैं वरदानो से—
क्या वे सब वरदान आज मिट्टी मे मिल जायेगे ?
कोई मेरे पुण्य न क्या उसके आड़े आयेगे ?

ये दिन भी थे मुझे देखने, झूले मेरा चन्दा,
उसे छीन कर ले जाये मुझसे फॉसी का फन्दा !
कहाँ छिप गया है रे ! तू भगवान कहाने वाले !
मॉ की ऑखो को बेटे की मौत दिखाने वाले !

अरे पिता होकर भी क्यो तुम उसको नही बचाते ?
मिल न सकेगा वह मुझसे, क्यो यह संदेश सुनाते ?
कैसे पत्थर धर लूं अपने उर पर मै मॉ होकर ?
जीवित ही क्यो रहूँ अरे ! अपने बच्चे को खो कर ?"

"आज सिंह जननी ! मैं तुमको क्या कह कर समझाऊँ ?
व्यथित हृदय से आज सांत्वना तुम्हे कहाँ से लाऊँ ?
किन्तु अवश्यभावी जो होता, वह सहना पडता है,
जहाँ न कोई सुने, वहाँ फिर चुप रहना पड़ता है।

सच है, अन्तिम भेट न अब बेटे से हो पायेगी,
यह अभिलाषा एक घुटन बन कर ही रह जायेगी।
हम से मिलना बेटे ने ही अस्वीकार किया है,
हम से कही अधिक जनता से उसने प्यार किया है।

मान्य न हुआ मिले हम से वह, जनता वचित हो,
यह तो बात गर्व की सचमुच, क्यो पीडा सचित हो ?
जिस बेटे ने है समाज के हित हमको ठुकराया,
जन-जन के अंतर मे उसका गौरव आज समाया।

पीडा से यह हृदय आज जो टूक-टूक हो जाता,
बेटे की गौरव-गरिमा से वही सांत्वना पाता।
जन-जन के स्वर से सुन पडते उसकी जय के नारे,
इसलिए आँखो के आँसू अब आँखों के तारे।

भेजा है संदेश, मिलेगा फिर वह हम से आकर,
जीवन की बलि दे, धरती पर जन-मगल बरसा कर।
अत आज बेटे का गम ही हमे गर्व बन जाये,
बेटे का बलिदान, देश का मुक्ति-पर्व बन जाये।"

"यह सदेश मुझे भेजा है बेटे ने कारा से,
मैं गर्वित हूँ सचमुच ही उसकी विचार-धारा से।
जन्म-जन्म के मेरे सचित पुण्य उसे मिल जाये,
बेटे के अरमान फूल बन धरती पर खिल जाये।

देखूं उसका रूप मुक्ति-अरुणोदय की लाली मे,
मेरा लाल मिले मुझको धरती की खुशहाली मे ,
माँ हो कर भी कहती हूँ मैं, लाल भले ही भूले,
आजादी की मंजिल को वलिदान किन्तु यह छूले।"

जिन्दगी और मौत से दो-दो बातें

"यह फाँसी की काल-कोठरी, अंधकार यह गहरा,
लगा आज मेरे जीवन पर यहाँ मौत का पहरा,
अंधकार मे भी यह किसकी आभा झलक रही है ?
तम के घट से शुभ्र-ज्योत्सना-सी यह छलक रही है।

कौन देवि ! तुम ? क्यो आई हो ? मैं पहचान न पाया,
तुम जीवन की ज्योति-किरण सी, तुम करुणा की छाया।
अन्तिम क्षण क्या मुझे सात्वना देने तुम आई हो ?
अंधकार मे कौन प्रेरणा की तुम अरुणाई हो ?"

"क्यों पहचानोगे तुम उसको, जिसको ठुकराया है,
मादक सपने छोड, पथ उत्सर्गो का भाया है।
मैं अभागिनी हूँ, न बनी जो इन चरणो की दासी,
मैं सचमुच ही मीन, रही जो जल मे रहकर प्यासी।

यही पूछने आई हूँ, क्या अब भी अपनाओगे ?
क्या चरणो की धूल-धरोहर मुझको दे जाओगे ?
यही धूल कुंकुम होगी अब मेरे अरमानो की
अभिशापो के जग मे छाया होगी वरदानो की।"

"देवि ! विवश कर दिया मुझे तुमने अपनी क्षमता से,
आज पराजित है पौरुष, नारी की मृदु ममता से।
बतलाता हूँ मैं रहस्य वह तुमको आज हृदय का
है मुझको स्वीकार पंथ सचमुच ही अब परिणय का।

फाँसी के तख्ते की घोड़ी पर चढ कर आऊँगा,
पहन टोप का सेहरा, मैं सचमुच ही हर्षाऊँगा।
हथ-कडियो के झन-झन का स्वर होगा मंगल वादन,
उन्मादी उमंग से होगा मन का पुलक-प्रसाधन।

मन्त्रोच्चार न्याय का पंडित विधिवत तभी करेगा,
यह दूल्हा भी सुखद-कल्पना के जग मे विचरेगा।
बाहु-पाश का हार दिखेगा वह फाँसी का फन्दा,
मेरा उर ज्योतित कर देगा गोरा-गोरा चन्दा।

अब असह्य हो रही प्रतीक्षा, शुभ-मुहूर्त हे! आओ!
अपनी मादक शुभ्र चाँदनी, इस मन पर छिटकाओ।
प्रस्तुत हूँ मैं आज, लिए जीवन का पूर्ण समर्पण,
आओ! रूप तुम्हारा हो मेरे भावो का दर्पण।"

और कौन अब तुम आई हो अट्टहास करती सी?
तम की चादर ओढ भयावहता जग मे भरती सी।
पूर्ण अशुभ की मूर्त-रूप-सी तुम हो कौन बताओ?
कौन प्रयोजन तुम्हे यहाँ लाया है, यह समझाओ।"

"क्या परिचय दूँ अपना, मुझको अभी जान जाओगे,
आत्मसात् हो मुझमे, तुम मेरा परिचय पाओगे।
मैं जीवन की मजिल, मुझको सभी मौत कहते है;
मैं हूँ, जिसकी छाया से सब दूर-दूर रहते है।

जिसको जैसे चाहा, मैंने हडप लिया क्षण भर मे,
समा गए हैं काल-बली सब मेरे महा-उदर मे।
मैं हूँ, जो सब ही के सर पर आकर मँडराती हूँ,
कही बुलाती भक्ष्य, कही मैं स्वय चली जाती हूँ।

पहुँच सभी मे जाती हूँ मैं अपनी भूख मिटाने,
छोटा-बड़ा और जड-चेतन, सब ही को अपनाने।
सत्य नही मरता है जग मे, मै भी कब मरती हूँ,
मेरी ऐसी भूख, विश्व को आत्मसात करती हूँ।

कुछ वे है, जो मेरे डर से थर-थर काँपा करते,
कुछ वे है, जो मेरे डर से बिना मौत ही मरते।
मेरा ही डर धर्म-कर्म के भावो को गति देता,
मेरा ही अस्तित्व सुपथ पर चलने की मति देता।

मात्र कल्पना से मेरी, है बड़े-बड़े थर्राते,
मेरी आशंका की आहट तक से वे भय खाते।
लोग सूख जाते जीवित ही, मेरी छाया तक से,
सुन मेरा पद-चाप धड़कनों का उर रहता धक् से।"

"किन्तु देवि ! तुम मेरे सम्मुख, मुझे न फिर भी भय है,
तुम्हे देखकर जाने क्यों मेरा उत्फुल्ल हृदय है।
लगता जैसे तुमको पा, जीवन की सिद्धि मिलेगी,
अरमानो की प्रिय फुलवारी जैसे आज खिलेगी।

तो आओ ! अपनाओ मुझको, आओ तुम स्वागत है !
भय से नही, किन्तु श्रद्धा से मेरा मस्तक नत है !
तुमको पाकर सतत-साधना होगी मेरी पूरी,
और निकट आओ, मिट जाए हम दोनो की दूरी।"

"वीर ! तुम्हारे इस साहस पर मैं सचमुच बलिहारी,
जीत गए तुम और मिली है मुझको मात करारी।
कई बार परखा है मैने तुमको बहुत निकट से,
किन्तु पराजित हुई, तुम्हारे मैं अदम्य जीवट से।

अब आई हूँ तुमको लेने, किन्तु स्वयं लज्जित हूँ,
अपने सब वरदान लिए मैं तुम पर ही अर्पित हूँ।
हाथ लगेगी मेरे, केवल तन की ही नश्वरता,
वरण करोगे किन्तु वीर तुम पावन परम अमरता।

यह बलिदान तुम्हारा, युग की साँसे गमयिगा,
यह बलिदान, मुक्ति की मगल बेला ले आयेगा।
देश तुम्हारा कभी न भूलेगा बलिदान तुम्हारा,
सदियों की साँसो पर भूलेगा बलिदान तुम्हारा।"

अलविदा

आज लग रहा कैसा जी को, कैसी आज घुटन है ?
दिल वैठा-सा जाता है, हर साँस आज उन्मन है।
बुझे-बुझे मन पर यह कैसी वोझिलता भारी है ?
क्या वीरो की आज कूच करने की तैयारी है ?

हाँ सचमुच ही तैयारी यह, आज कूच की वेला,
माँ के तीन लाल जायेगे, भगत न एक अकेला।
मातृ-मूर्ति पर अर्पित होगे, तीन फूल ये पावन,
यह उनका त्यौहार सलौना, यह दिन उन्हे सुहावन।

फाँसी की कोठरी वनी यह इन्हे रगशाला है,
झूम-झूम सहगान हो रहा, यह क्या मतवाला है।
भगत गा रहा—"आज पहन हम चले वसन्ती चोला,
जिसे पहन कर वीर शिवा ने माँ का वन्धन खोला।"

झन-झन-झन वज रही वेड़ियाँ, ताल दे रही स्वर मे,
झूम रहे सुखदेव, राजगुरु भी है आज लहर मे।
नाच-नाच उठते है, ऊपर दोनो हाथ उठाकर,
स्वर मे ताल मिलाते, पैरो की वेड़ी खनका कर।

पुन वही आलाप—"रँगे हम आज वसन्ती चोला,
जिसे पहन राणा प्रताप का अल्हड यौवन डोला।
वही, वसन्ती रग का चोला आज सभी हम पहने,
लपटे वन जाती जिसके हित, भारत की माँ वहने।

उसी रंग मे अपने मन को रँग-रँग कर हम झूमे,
हम परवाने, वलिदानो की अमर-शिखाएं चूमे।
हमे वसन्ती चोला, माँ तू स्वय आज पहना दे,
तू अपने हाथो से हमको रण के लिये सजा दे।"

सचमुच ही आ गया निमत्रण लो इनको यह रण का,
वलिदानो का पुण्य-पर्व वन यह त्यौहार मरण का।
जल के तीन पात्र सम्मुख रख, यम का प्रतिनिधि वोला—
स्नान करो, पावन कर लो तुम तीनो अपना चोला।"

झूम उठे यह सुन कर तीनो ही अल्हड मर्दाने,
लगे गूंजने और तीव्र हो उनके मस्त तराने।
लगी लहरने कारागृह मे इन्कलाव की धारा,
जिसने भी स्वर सुना, वही प्रति-उत्तर हुकारा।

खूब उछाला, एक-दूसरे पर तीनो ने पानी,
होली का हुड-दग वन गई उनकी मस्त जवानी।
गले लगाया एक दूसरे को वाँहो मे कसकर,
भावो के सव वाँध तोडकर भेटे वीर परस्पर।

मृत्यु-मच की ओर वढ चले अव तीनो अलवेले,
प्रश्न जटिल था, कौन मृत्यु से सव से पहले खेले ?
वोल उठे सुखदेव—"शहादत पहले मेरा हक है,
वय मे मैं ही वडा सभी से, नही तनिक भी शक है।"

तर्क राजगुरु का था, "सवसे छोटा हूँ मै भाई !
छोटो की अभिलापा पहले पूरी होती आई।
सवसे पहले मुझे चूमने दो फाँसी का फन्दा,
है उधार फासी पर चढ़ने खुशी-खुशी यह वन्दा।"

भगतसिंह ने समझाया—"यह न्याय-नीति कहती है,
जब दो झगड़े, बात तीसरे की तब बन रहती है।
जो मध्यस्थ, बात उसकी ही दोनों पक्ष निभाते,
इसीलिए पहले मैं झूलूं न्याय-नीति के नाते।"

यह घोटाला देख चकित थे न्याय-नीति अधिकारी,
होड़ा, होडी और मौत की? ये कैसे अवतारी?
मौत सिद्ध बन गई, झगड़ते है ये जिसको पाने,
कही किसी ने देखे है क्या इन जैसे दीवाने?

मौत, नाम सुनते ही जिसका लोग काँप जाते है,
ये कैसे लड़ रहे उसी को, कैसे मदमाते हैं।
भय इनसे भयभीत, अरे! यह कैसी अल्हड़ मस्ती।
वन्दनीय है सचमुच ही इन दीवानो की हस्ती।

मिला शासनादेश, "बताओ अन्तिम अभिलाषाये।"
उत्तर मिला, "मुक्ति कुछ क्षण को हम बन्धन से पाये।"
मुक्ति मिली हथकड़ियों से, अब प्रलय वीर हुंकारे,
फूट पड़े उनके कण्ठो से इन्कलाब के नारे।

"इन्कलाब हो अमर हमारा, इन्कलाब की जय हो,
इस साम्राज्यवाद का भारत की धरती से क्षय हो।
हँसती-गाती आजादी का नया सवेरा आये,
विजय-केतु अपनी धरती पर अपना ही फहराए।"

और इस तरह नारो के स्वर मे वे तीनो डूबे,
बने प्रेरणा जग को, उनके बलिदानी मंसूबे।
भारत-माँ के तीन सुकोमल फूल हुए न्यौछावर,
हँसते-हँसते झूल गए वे, फाँसी के फन्दों पर।

हुए मातृ-वेदी पर अर्पित तीन सूरमा हंसकर
विदा हो गए तीन वीर, दे यश की अमर धरोहर,
अमर धरोहर यह, हम अपने प्राणो से दुलराये
सीच रक्त से, हम आजादी का उपवन महकाये।

जलती रहे सभी के उर मे यह बलिदान-कहानी,
तेज धार पर रहे सदा अपने पौरुप का पानी।
जिस धरती के बेटे हम, सब काम उसी के आये,
जीवन देकर, हम धरती पर जन-मंगल बरसाये।

●

बलिदानों के मान-दंड-से मन पर जमे हुए हो

भारत के स्वातन्त्र्य-समर के ओ उद्भट सेनानी !
गौरव-ज्वाला-गिरि के ओ उन्नत मस्तक अभिमानी !
आँसू के सागर के उठने वाले ओ वडवानल !
अपरिमेय, श्रद्धेय, ध्येय पर मिटने वाले पागल !

चन्दन-वन से उठी लपट के पावन अमर उजाले !
मर कर, जीवित रहने वालो के यश के रखवाले !
यौवन के उन्माद प्रखर, आलोक-पुंज पावनतम !
मुक्ति यज्ञ के ओ हविष्य, आहुति-स्वाहा के सरगम !

क्रान्ति-गगन के धूमकेतु ! ओ आग उगलने वाले !
प्राणो की जलती मशाल खुद लेकर चलने वाले !
मेरु-दण्ड विप्लव मंथन के, अरि को घूँट गरल के !
शख-नाद विद्रोही स्वर के, शिखर सगठन वल के !

क्रान्ति-पथ के नए मोड के सफल दिशा-दिग्दर्शक !
मानव-मानव की समता के ओ सपने आकर्षक !
सुनते है तुम आज नही हो, जग से चले गये हो,
सुना, न्याय के रंग-मच पर ही तुम छले गए हो।

लील गई तुमको सुरसा अत्याचारी शासन की,
अन्यायो के धन से तुम पर विजली गिरी दमन की।
पर हमको लगता है जैसे तुमको मौत न आई,
अरे ! मौत ने तुमको खाकर खुद ही मुँह की खाई।

चले गये तुम, माँग वीरता की सूनी-सूनी है;
राख उड़ रही, बलिदानो की उजड़ी-सी धूनी है।
तुमको खोकर, आठ-आठ आँसू मानवता रोई।
इतिहासो की कालिख तुमने पून-रक्त से धोई।

चले गये तुम, पर हमको लगता तुम नही गये हो,
नए-नए रूपो मे मिलते हमको नए-नए हो।
लगता है तुम यही कही हो, तुम अब भी जीवित हो,
किसी एक तन की कारा मे किन्तु नही सीमित हो।

तुम अनंग बन कर जीवित हो, भारत के जीवन मे,
लगता जैसे समा गए तुम भारत के दर्शन मे,
जब अन्यायो के विरुद्ध आवाज उठाई जाती—
अत्याचारो की होली जब-जब सुलगाई जाती—

जब सघर्प-चुनौती होती ध्वनित दलित के स्वर से—
जब प्रतिशोध-भावना उठती उत्पीडित अतर से—
लगता, जैसे क्राति-मंत्र तुम ही फूंका करते हो,
लगता, जैसे उग्र-चेतना मन मे तुम भरते हो।

लगता जैसे इन्कलाब के दृढ नारो मे तुम हो,
लगता जैसे आसमान के इन तारो मे तुम हो।
लगता जैसे सतलज की चचल लहरो मे तुम हो,
लगता जैसे भारत के गाँवो शहरो मे तुम हो।

लगता, जैसे क्रान्ति-अमर के गगन-घोष मे तुम हो,
लगता, जैसे प्रबल रक्त के क्रुद्ध-रोष मे तुम हो।
लगता, जैसे जीवन के हर उच्च त्याग मे तुम हो,
लगता जैसे अतर की विप्लवी आग मेँ तुम हो।

लगता, जैसे तुम जीवित इस जगती के कण-कण में,
लगता, जैसे तुम जीवित हर देश-भक्त के प्रण में।
युग की क्रान्ति-भावनाओ मे, अब भी रमे हुए हो,
बलिदानो के मान-दंड-से मन पर जमे हुए हो।